श्री सिद्धाय नमः ।

प्रातःस्मरणीय न्यायाचार्य,
पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा लिखित

वर्णी अध्यात्म-पत्रावली

भाग १

4164

•

वर्णी-स्नातक परिषद्‌के लिये
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी द्वारा
प्रकाशित

•

श्रुत-पंचमी २०२५ वि०

प्राप्ति स्थान

मंत्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला,
चमेली कुटीर, डुमरावबाग-वसति,
अस्सी, वाराणसी

●

संयोजक—श्री वर्णी स्नातक परिषद
c/o सुषमा प्रेस,
सतना, म० प्र०

●

द्वितीयावृत्ति २०००
मूल्य एक रुपया

●

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी—१

प्रस्तावना

नीरज जैन

प्रात स्मरणीय पूज्य सत श्री गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज जैनदर्शन-के अनुपम ज्ञाता थे। समयसार तो उनकी साँसोंमें बस गया था। उसकी अमृतचन्द्राचार्यकृत गद्य-टीका तक उन्हे कण्ठस्थ हो गई थी। अपनी युवा-वस्थामें ही उन्हे समयसारपर अधिकार हो गया था। इसी कारण उनके पत्रोंमे वस्तुस्वरूपके निर्णयका आभास, निमित्त-उपादानका समन्वय और तत्त्वार्थ-श्रद्धानकी प्रेरणा तथा राग, द्वेष, मोह छोडनेका उपदेश पग-पग पर पाया जाता है। उनके ऐसे प्रेरणाप्रद पत्रोके प्रथम-प्रकाशनकी यह कहानी अट्ठाईस वर्ष पुरानी है।

उन दिनो गृहीत-मिथ्यात्वका प्रत्यक्ष-मार्ग छोडकर श्री कानजीस्वामीने अपनी मण्डलीमे दिगम्बर जैन साहित्यका पठन-पाठन प्रारम्भ ही किया था। अनेक ग्रन्थोमे और विशेषकर समयसारमे अर्थकी गुत्थियाँ उनके सामने आती थी और वे शकाएँ सोनगढकी स्वाध्याय-मण्डलीके कतिपय सदस्यो द्वारा अपने कलकत्तेके मित्रोको लिखी जाती थी। कलकत्तेसे पत्रो द्वारा ऐसे प्रश्न पूज्य वर्णीजीके पास भेजे जाते थे और उनसे उनका समा-धान कराकर उन्हे कलकत्तेसे सोनगढ भेज दिया जाता था।

पूज्य वर्णीजी इसके अतिरिक्त अपने प्राय प्रत्येक पत्रमे उपदेशामृतकी दो-चार बूँदोका समावेश तो कर ही दिया करते थे। उनके ऐसे पत्रोकी उपयोगिता देखते हुये कलकत्तेके जिज्ञासु-मण्डल (२७ पोलोक स्ट्रीट) ने विक्रम स० १९९७ वीर स० २४६६ मे "आध्यात्मिक पत्रावलि" नामसे इन पत्रोका सकलन प्रकाशित किया। समाधि-मरणको प्रोत्साहित करने वाले उनके कुछ और पत्रोंको भी समाधि-मरण पत्र-पुञ्ज नामसे इसी सकलनमे जोड लिया गया।

कलकत्ता निवासी श्रीमान् बाबू खेमचन्द मूलशकरजीने इस प्रकाशन

के लिये ब्र० श्री छोटेलालजी और श्री लाला त्रिलोकचन्दजीके पास सगृहीत पत्र भी प्राप्त कर लिये। सागरमे वर्णीजीके परम भक्त श्रीमान् सिंघई कुन्दन-लालजीके पास उस समय वर्णीजीके पत्रोका जो सग्रह था उसे प्राप्त करनेकी भी कोशिश की गई, परन्तु उस समय उसमें सफलता नही मिली[1]।

कलकत्तेसे प्रकाशित होकर "अध्यात्मिक पत्रावलि" की प्रतियाँ सोन-गढ पहुँचते ही वहाँ उनकी बडी प्रतिष्ठा हुई। "पूज्य वर्णीजी सम्यग्दृष्टि महापुरुष है और उनके वचनोमे आगमका रस छलकता है", इस कथनके साथ सोनगढके शास्त्र-भण्डारमे आध्यात्मिक-पत्रावलिकी प्रति स्थापित की गई। विशिष्ट ज्ञानाभ्यासी जिज्ञासुओको इसके निरन्तर स्वाध्यायकी प्रेरणा-के साथ सैकडो प्रतियोका वितरण स्वय श्री कानजीस्वामीने स्वहस्तसे किया। इतना ही नही, वरन्, सोनगढके प्रकाशनोमे उस समय सद्ग्रन्थो-की जो सूची प्रकाशित होती थी इस आध्यात्मिक-पत्रावलिका समावेश किया गया था।

बादमे सोनगढमे कब और कैसे यह सकलन महत्त्वहीन तथा अप्रमा-णिक मान लिया गया, इसकी शोध न तो यहाँ अभिप्रेत है और न ही इसका उत्तर हमारे पास है। अवसर आने पर अन्यत्र इसकी चर्चा की जायगी।

पूज्य वर्णीजीके ये छोटे-छोटे पत्र अपने भीतर बडी-बडी बातें सँजोये हुये है। जिस स्पष्टता, सरलता, सूक्ष्मता और सक्षेपसे आगमकी बडी-बडी

---

१ बादमें दो वर्ष उपरान्त पत्रोंका यह सकलन श्रीमान् सिंघईजीने स्वय प्रकाशित करके वितरित कराया था। उसकी प्रस्तावनामें श्री प० मूलचन्दजीने यह उल्लेख इन शब्दोंमें किया था —

"अतमें हम कलकत्ता निवासी श्रीमान् बाबू खेमचन्दजी मूलशकरजीसे क्षमा-प्रार्थी है जो हम उनकी मॉग पूरी नहीं कर सके। हमारे श्रीमान् सिंघईजी महोदयने ही पत्र निकलवानेकी कृपा की, इसीसे हम भेजनेमें असमर्थ हो गये।"

सिंघईजी द्वारा वीर स० २४६८में प्रकाशित इस "आध्यात्मिक पत्रावलि" की एक प्रति श्री सेठ बिन्द्राबनजी दमोहकी कृपासे मुझे प्राप्त हो गई है और वर्णी स्नातक परिषदके तत्वावधानमें उसके भी पुनर्मुद्रणकी योजना विचाराधीन है।—नीरज

गुत्थियाँ इन पत्रोंमें सुलझाई गई हैं उस विशेषताके साथ ग्रन्थोंमें उनका ढूंढना आसान नही। यही कारण है कि पत्रोसे अनेक लोग अपना कल्याण करनेमे समर्थ हुए है और हो रहे हैं।

विक्रम सवत् २०३१ मे पूज्य वर्णीजीकी जन्म-शताब्दीका समारोह मनानेका सौभाग्य हमें मिलने वाला है। उसके पूर्व पूज्य वर्णीजीके अप्रकाशित पत्रो एव साहित्यका प्रकाशन कराने तथा अनुपलब्ध प्रकाशनोका पुनर्मुद्रण करानेका मेरा सुझाव वर्णी स्नातक परिषद्के समक्ष विचाराधीन है। इस सकलनका यह पुनर्मुद्रण उसी योजनाका मगलाचरण है। दिगम्बर जैन मन्दिर सतनाके शास्त्र-भण्डारमे मुझे यह प्रति प्राप्त हुई थी तथा प्रकाशनकी चर्चा करते ही मेरे एक मित्रने एक सौ रुपयेका गुप्तदान देकर मेरे सकल्पको बल प्रदान किया। इस उदारताके लिये मैं मन्दिरकी प्रबन्ध समितिका तथा अपने उस अनाम भाईका आभारी हूँ। इधर "अध्यात्म पत्रावलि" नामसे कतिपय सकलन मेरे देखनेमे आये है इसलिये इसका नाम "वर्णी अध्यात्म पत्रावली" कर दिया गया है। मैं समझता हूँ यह परिवर्तन आपको पसद आएगा।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रथमालाके सचालकोने इसे (स्नातक परिषद्के व्यय पर) स्नातक परिषदके लिये उसके पाँचवें वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर प्रकाशित करना स्वीकार किया है तथा उसमे यथेष्ट सहयोग दिया है। प्रकाशन-व्ययके लिये अर्थ-सहयोग भी कई मित्रोने प्रदान किया है। वर्णी ग्रथमालाके मत्री आदरणीय प० दरबारीलालजी कोठिया और श्री महावीर प्रेस वाराणसीके संचालक मेरे मित्र श्री बाबूलाल जैन फागुल्लके विशेष सहयोगके बिना तो समय पर यह भेंट आप तक पहुँचाना असभव हो गया था। अत उपरोक्त सभी सज्जनोका आभार मानते हुये मै कामना करता हूँ कि पूज्य वर्णीजीका यह वचनामृत अधिकाधिक जीवोकी श्रद्धा-बेलिका सिंचन करनेमे निमित्त बने।

शाति-सदन, सतना,
श्रुत-पचमी, २०२५ वि०

वर्णी स्नातक परिषद्

स्वनामधन्य स्व० सन्त गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्यके शिष्य-प्रशिष्यो और अनुगामियो द्वारा सचालित इस सस्थाका उद्देश्य है परस्पर मैत्रीभावकी अभिवृद्धि और विशेषत समाज, सस्कृति, धर्म एव शिक्षाके क्षेत्रमे अपनी विचारधारा प्रस्तुत करना और उसमे यथासभव सहयोग देना। इसका प्रथम अधिवेशन प० गोपीलाल अमर द्वारा (१९६४) सागरमे, द्वितीय प्रो० वीरेन्द्रकुमार द्वारा (१९६५) सागरमे, तृतीय श्री जीवनलाल द्वारा (१९६६) शाहपुरमे और चतुर्थ श्री प्रकाश भारतीय द्वारा (१९६७) शाहगढमे सयोजित किया गया। पाँचवाँ अधिवेशन प० गोपीलाल अमरके सयोजकत्व मे (१९६८) को श्रुत-पचमीको सतनामे हो रहा है।

इन अधिवेशनो और सामयिक गतिविधियो द्वारा इस सस्थाने पूज्य वर्णीजीके सैकडो शिष्यो, भक्तो और अनुगामियोको आमन्त्रित कर उन्हे अपने अनुभवोके आदान-प्रदान और समस्याओके समाधानका अवसर जुटाया है। यही इस सस्थाकी मौलिक उपलब्धि है। सन्त वर्णीके मूल सिद्धान्त 'सेवाभावी बनो' के प्रचारमे भी इसे अच्छी सफलता मिली है। पी-एच डी प्राप्त करने वाले विद्वानोको सम्मानित कर इसने शोधकर्ताओ-को प्रोत्साहन दिया है। अब इस सस्थाने 'वर्णी सस्मरण ग्रन्थ' के प्रकाशन तथा कुछ विश्वविद्यालयोमे 'जैनविद्या विभाग' की स्थापनाका कार्य भी हाथमे लिया है। वर्णीजीके अप्रकाशित साहित्य एव पत्रोका प्रकाशन तथा अनुपलब्ध प्रकाशनोका पुनर्मुद्रण भी सस्थाका ध्येय है। यह लघु-भेंट हमारे उसी संकल्पका प्रतीक है। आपका सहयोग वाछनीय है।

५७, लक्ष्मीपुरा,
सागर, म प्र
श्रुत-पञ्चमी, १९६८,

गोपीलाल अमर
सयोजक

प्रकाशनके सम्बन्धमें

श्री नीरजजी अध्यक्ष वर्णी स्नातक-परिषद्, सतनाका गत ३० नवम्बर १९६७को एक पत्र मिला, जिसमे आपने लिखा कि 'पूज्य वर्णीजी महाराजके अध्यात्मरससे परिपूर्ण कुछ पत्रोंका सग्रह "अध्यात्म-पत्रावली" के नामसे वीर सम्वत् २४६६ मे जिज्ञासु-मण्डल कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तकका पुन प्रकाशन तथा अधिकाधिक प्रचार करना बहुत आवश्यक है, इस बातको ध्यानमे रखते हुए वर्णी स्नातक-परिषद्ने इसके पुन प्रकाशनका विचार किया है। सम्पूर्ण वर्णी-साहित्य खरीदनेकी इच्छा रखनेवालोको आपकी ग्रन्थमालासे यह पुस्तक भी प्राप्त हो सके , इस दृष्टिसे हम यह प्रस्ताव करते है कि—

(१) यह प्रकाशन वर्णी स्नातक-परिषद्के लिए वर्णी ग्रन्थमाला द्वारा किया जाय।

(२) इसका समस्त मुद्रण-भार वर्णी स्नातक-परिषद् वहन करेगी और पन्द्रह-सौ प्रतियाँ अधिवेशनके समय वितरित करने या बेचनेके लिए रखकर शेष पाँच-सौ प्रतियाँ ग्रन्थमालाको नि शुल्क भेंट कर देगी।'

वर्णी स्नातक-परिषद् और वर्णी ग्रन्थमाला दोनोके समान लक्ष्यको ध्यानमे रखकर वर्णी ग्रन्थमालाकी प्रबन्ध-समितिने दिनाक २७-१२-६७को कटनीमे हुई अपनी बैठकमे श्री नीरजजीके प्रस्तावोको स्वीकार कर लिया। फलत उक्त अध्यात्म-पत्रावली वर्णी स्नातक-परिषद्के लिए श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाकी ओरसे प्रकाशित हो रही है। वर्णी स्नातक-परिषद्ने प्रकाशन-भार स्वय वहनकर और ग्रन्थमालाको पाँच-सौ प्रतियाँ नि शुल्क भेंट देकर जिस औदार्यका परिचय दिया है उसके लिए हम श्री नीरजजी तथा परिषद्के सदस्योका धन्यवाद करते है।

ज्येष्ठ कृष्णा १२, वी० नि० २४९४,
२४ मई, १९६८

दरबारीलाल कोठिया
मत्री, श्री ग० वर्णी जैन ग्रंथमाला
वाराणसी
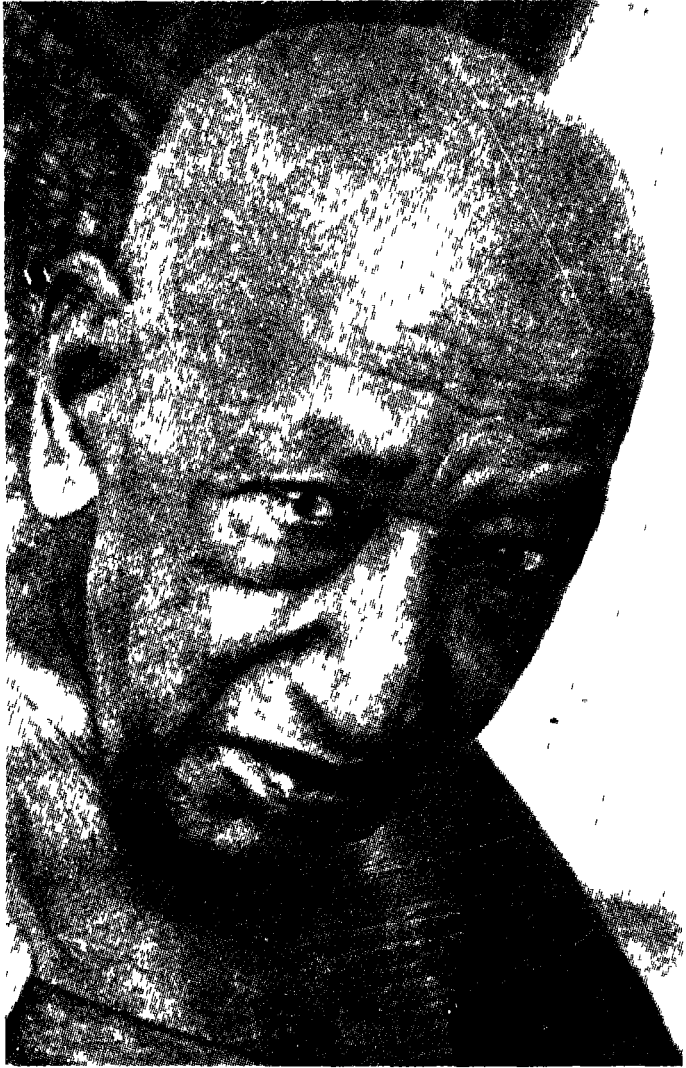
पूज्य वर्णीजी

★ श्री वीतरागाय नम ★

वर्णी अध्यात्म पत्रावली

'ईसरी'

श्रीयुत बाबाजी,

योग्य इच्छाकार।

महाराज, आपका निरन्तर समाधिमरण है, काय और कषायके कृश करनेको ही सल्लेखना कहते हैं, सो आपके निरन्तर हो रहा है, कायकी कृशताकी कोई आवश्यकता नही, यह पर वस्तु है, इसको न कृश ही करना और न पुष्ट ही करना, अपने अधीन नही, हा, यह स्वाधीन वस्तु है, जो अपनी कषायको कृश करना। क्योकि इसका उदय आत्मामे होता है। और उसीके कारण हम कृश हो जाते हैं। अर्थात् हमारे ज्ञान-दर्शन घाते जाते हैं और उसके घातसे ज्ञानदर्शनका जो देखना जानना कार्य है, वह न होकर इष्टानिष्ट कल्पना सहित देखना जानना होता है। यही तो दु खका मूल है। अत आप त्यागकी मुख्यता कर शरीरकी कृशतामे उद्यम न कीजिये, क्योकि वृद्धावस्था है। काय स्वयमेव कृश हो रही है। रही कषायकी कथा, सो उसके अर्थ निरन्तर चिद्रूपमे तन्मयता ही उसका प्रयोजक है। सो आप कर ही रहे है। औदयिक भावोका

रुकना तो हाथकी बात नही किन्तु औदयिक भावोको अनात्मीय जान उनमे हर्ष-विषाद न करना ही पुरुषार्थ है। आप विशिष्ट पुरुष हैं। आपको क्या उपदेश लिखू ? परन्तु जो कुछ आपने मुझे दिया वही आशिक रूपसे आपकी भेट करता हूँ। आपने लिखा—समागम अच्छा नही, सो महाराज! मेरी अल्पमतिके अनुभवसे अब आपको उस स्थानको छोडकर अन्यत्र जाना सुविधाजनक न होगा। जिस स्थान पर जाइये, वही यही बात पाओगे, फिर जहा अनुकूल साधन हो उन्हे त्याग कर अनुकूल साधन बनानेमे उपयोगका दुरुपयोग है। कल्याणका पथ आत्मा है, न कि बाह्य क्षेत्र। यह बाह्यक्षेत्र तो अनात्मज्ञोकी दृष्टिमे महत्व रखते है। चिरकालसे हमारे जैसे जीवोकी प्रवृत्ति बाह्य साधनोकी ओर ही मुख्य रही, फल उसका यह हुआ जो अद्यावधि स्वात्मसुखसे वचित रहे। दैवयोगसे आप जैसे निस्पृह पुरुषसे समागम हुआ और वह वृत्ति अब इस रूपसे बहिर्मुख जानेको नवोढावत् सकोच करने लगी। अब तो आप अल्पकालमे स्वर्गीय दीपचन्द्रवत् केवल शुद्ध रूपवत् हमको एकाकी असहाय छोडकर कुछ काल वैक्रियक शरीर धारण कर नन्दीश्वर आदि क्षेत्रोकी वन्दना कर असयममे ही कालयापन करेगे। अत जब तक वह अवसर नही आया है, तब तक उसी स्थान पर सयमोपयोगी क्रियामे ही स्वकीय उपयोगको लगा दीजिये। तथा स्थानान्तरके विकल्पको हृदयसे निर्वासित कर दीजिये। हमारा इतना प्रबलतम भाग्य नही जो आपकी वैयावृत्य कर पुण्योपार्जनके पात्र हो। फिर भी अन्तरङ्गसे आपके त्यागगुणकी निरन्तर मुद्रा हृदयमे ऐसी दृढरूपसे मुद्रित है, जो अहर्निशि आत्माको पुण्य क्या वस्तु है, वीतराग मार्गका स्मरण करा रही है। मुझे तो दृढ विश्वास है जो आपके कुछ ही काल बाद मै भी उसी दशाका पात्र हूँगा जो आपको इष्ट है।

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप लिखते हैं कि हम विषय कषायमे फस गये। यदि वास्तविक ज्ञानसे यह जान लिया तब मेरी समझमे आप विषय-कषायसे छूट गये। क्योकि सम्यग्ज्ञानी कदापि कषायका स्वामी नही, क्योकि जिसके ज्ञानचेतनाकी उद्भूति हो गई वह औदयिक भावोका कर्त्ता नही, ज्ञाता है। अत अब आपका यह लिखना कि हम मूर्खशिरोमणि हैं, सर्वथा अनुचित है। जब हमने ससार बल्लरीके अर्थ सम्यग्ज्ञान परशुको हस्तगत कर लिया अब दु ख काहेका ? हाँ, यह अवश्य है अभी उसके चलानेकी सामग्रीके न होनेसे चलानेका अवसर नही, सो यह कालकृत विषमता है, इस पर्यायमे जो शान्ति आत्माका लक्ष्य है उसका मिलना कठिन है। जितनी शान्ति मिल गई उसीमे सन्तोष करो। सन्तोषसे ही सुख होता है। बाह्य पदार्थोके सम्बन्धको हेय जान कदापि उनमे अनुराग न करो। आत्मीय वस्तुकी ओर आओ। आखिर पर तो पर ही है। परके स्मरणसे आत्माकी विभूति पूर्ण विकाससे वचित रहती है। चन्दन वृक्षके साथ, अग्निका सम्पर्क दाहजनक ही होता है। अत अपनेको कदापि हीन सत समझो। इसका यह अर्थ न लगाना जो सिद्ध समझो। जो हो सो समझो। किसीके समक्ष अपनी लघुता प्रकट करनेसे क्या लघुता चली जाती है ? लघुता दूर करनेके उपाय ही उसके दूर करनेके अस्त्र हैं। सिद्ध स्मरण सिद्धत्वका प्रयोजक नही किन्तु सिद्ध पर्यायके उत्पादक कारण ही उसके उपाय है। जो कुछ पर्यायसे बने उसे करो। चिन्ता करना अच्छा नही। बधछेदनकी चिन्ता बन्धका छेदक नही किन्तु चिन्ता न करना ही उसके दूर करनेका उपाय है। मेरा मण्डलीसे अन्तिम यह समाचार कहना जो खतौली जैसी विद्वच्छैलीसे सुशोभित थी उसकी रक्षा करना।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

इस ससारमे अनन्त भव भ्रमण करते सज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्व सामान्य नही। इसे प्राप्तकर आत्महितमे प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है (बुद्धे फल ह्यात्महितप्रवृत्ति) इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है, जो आत्महितमे प्रवृत्ति करना। अब यहा विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है? और उसके साधक कौनसे उपाय है? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तब अनायास हमारी उसमे प्रवृत्ति हो जावे।

साधारण रूपसे प्राणियोकी प्रवृत्ति प्राय दु ख निवारणके लिये ही होती है। यावत् कार्य मनुष्य करता है प्राय उसका लक्ष्य दु ख न होना ही है। उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यो न हो परन्तु लक्ष्य दु खनिवृत्ति है। अत इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्माका हित दु खनिवृत्ति है। अब हमे दुखका स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है। आत्मामे जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमे अच्छी नही लगती, चाहे वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो। हम उसे रखना अच्छा नही समझते, चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो, चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनो ही इसे पृथक् करना चाहते है। जब इस जीवके तीव्र कषायका उदय होता है तब क्रोध करनेकी उद्वेगता होती है, और जब तक उसके क्रोध-विषयक कार्य नही सम्पन्न होता—व्याकुल रहता है। कार्य होते ही वह व्यग्रता नही रहती तब अपनेको सुखी समझता है। इसी प्रकार जब हमारे मन्द कषायोदय होता है उस कालमे हमे धर्मादि शुभोपयोग करनेकी इच्छा होती है। जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरङ्गमे उसे करनेकी इच्छाने आकुलता उत्पन्न करदी थी वो शात हो जाती है। इसी प्रकार यावत् कार्य हैं उन सर्वमे

मोही जीवकी यही पद्धति है। इससे यह निष्कर्ष निकाला कि सुखो तो जीव आकुलताकी जननी इच्छाके अभावमे होता है, परन्तु जिन जीवोंके मिथ्याज्ञान है वे जीव उस कार्यके सम्पन्न होनेसे सुख मानते हैं। इसी मिथ्या भावको दूर करना ही हितका उपाय और अहितका परिहार है। ऐसा ही पद्मनन्दी महाराजने लिखा है—

यद्यद्यदेव मनसि स्थित भवेत्तदेव सहसा परित्यजेत्।
इत्युपाधिपरिहारपूर्णता सा यदा भवति तत्पद तदा ॥

अर्थात् मनमे जो जो विकल्प उत्पन्न होवे वो वो सर्व सहसा ही परित्याग देवे। इस प्रकार जब सब उपाधिका परिहार पूर्णताको प्राप्त हो जाता है उसी कालमे वह जो निजपद है अनायास हो जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि मोहजन्य जो जो विकल्प है वे ससारके वर्धक ही है। इसी आशयको लेकर श्रीपद्मनन्दी महाराजने कहा है—

बाह्यशास्त्रगहने विहारिणी, या मतिर्बहुविकल्पधारिणी।
चित्स्वरूपकुलसद्मनिर्गता, सा सती न सदृशी कुयोषिता ॥

जो बुद्धि चैतन्यात्मक कुलगृहसे निकल कर बाह्य शास्त्ररूपी वनमे बहुत विकल्पोको धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नही किन्तु कुलटा स्त्रीके समान व्यभिचारिणी है। इसका भी यही तात्पर्य है जो बुद्धि रागादि कलक सहित परपदार्थोंको विषय करनेमें चतुरा भी है तब भी पन्यागनावत् वह हेया है। बेटी, जहातक बने, अन्त शत्रु जीवके रागादिक है उन्हीके विजयका उपाय करना। जप, तप, सयम, शीलादि जो कार्य हैं उनका एतावन्मात्र ही प्रयोजन है। यदि इस मुख्य लक्ष्यपर ध्यान न दिया तब भुसका लीपना चिकना न चादना। हमारी श्री त्रिलोकचन्द्रादि सर्व सज्जनोसे यथायोग्य। अब हमने दीपावली तक पत्र देनेका त्याग कर दिया है। दादीजोसे हमारी प्रीतिपूर्वक धर्मवृद्धि कहना।

●

श्रीयुत त्रिलोकचन्द्रजी

दर्शन विशुद्धि ।

बाईजीको दमा हो गया है । यदि योग्य दवा मिले तब आराम हो सकता है । आप किसी हकीमसे पूछकर नुसखा लिखना । उनको दमा गर्मीसे है । रात्रि-दिन निद्रा नही आती । किन्तु धर्ममे दृढ श्रद्धा है शिथिलताका नाम नही । आप धर्ममे दृढ रीतिसे श्रद्धा रखना और भूल कर त्यागमे न पड जाना । जैसी कषाय घटै वैसा त्याग करना । मेरी लाला हुकमचन्द्र आदिसे दर्शन विशुद्धि । यदि बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा होता तो मै गर्मीमे वही रहता । मुझे आप लोगोंका समागम बहुत रुचिकर है—बाबाजीसे इच्छाकार । विशेष फिर । उत्तरके लिये जवाबी पोष्टकार्ड या टिकट आना चाहिये ।

●

श्रीयुत त्रिलोकचन्द्रजी

दर्शन विशुद्धि ।

अब गर्मी बहुत पडने लगी है । बाह्य गर्मी—अभ्यन्तर गर्मीसे शान्तिका लाभ होना अत्यन्त असम्भव है परन्तु कषायवश भ्रमण करना पडता है । यहा भ्रमणमे शान्ति कहा ? जो सुख और शान्तिका लाभ एक स्थानमे और परके असगमे होता है, वह कदापि परके समागम और नाना स्थानोमे नही होता ।

अस्तु, पत्र इस पतेसे देना—गणेशप्रसाद वर्णी (मधुवन) तेरापथी कोठी—पोस्ट पारसनाथ जिला—हजारीबाग ।

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आपका आया । समाचार जाने । आपकी विचारधारा

पवित्र एव श्लाघ्या है। मैं उसे सादर स्वीकार करता हूँ, क्योंकि जो निवृत्तिमार्ग है उसका न कोई समर्थक है, न कोई निषेधक है और न कोई उस पवित्र भावका उत्पादक है। जिसके वह अभिवन्दनीय भावको प्राप्ति हो गई उसे ही हम सिद्धात्माका अंश समझते हैं और उसको भव्य शब्दसे व्यपदेश करते हैं। अब मै उस अशमे—जिसमे आपने मेरी सम्मतिकी आवश्यकता समझी है, देता हूँ। इस अधम कालमे वास्तविक धर्मात्माओकी विरलता है तथा जो विरले हैं वे समाजमे नगण्य है। यद्यपि ऐसे व्यक्ति परापेक्ष नही होते और न लौकिक जनतोषके अर्थ उनका प्रयास ही रहता है। तथापि भगवदादि जिनको भी इस व्यवहार धर्मकी विरहतामे ६ मासका अन्तराय हुआ यह जिनागमप्रसिद्ध है। मुख्योदय उनका था फिर भी निमित्त कारणकी त्रुटि दिखाई गई। आपने जो २०) रुपये मासिकका विचार किया इसके स्थानमे ३०) रुपये होने चाहिये ७००) रुपये तो पोष्टमे, १३००) रुपये निज पास तथा ४०००) रुपये सूद पर। अत थोडे दिन और कष्ट सहलो फिर धर्म साधनमे एकदम लग जाना। अभी कुछ कम काल दुकानमे दो। एक घटा कम दो। चार मास बाद फिर एक घटा कम कर देना, इस तरह दो वर्षमे दुकानसे पिण्ड छूट जावेगा। विद्या पढना अभीसे आरम्भ कर देना। अथवा जो आपकी इच्छा हो सो करना। क्योकि पर पदार्थका परिणमन निजाधीन नही। पडित अजितकुमारजी बहुत योग्य है, उसके यहाँ रहनेका प्रयत्न करना फिर ऐसा योग्य पडित नही मिलेगा। मेरी अपनी सर्व साधर्मी मण्डलीसे दर्शन विशुद्धि। जो दोनो लडके हैं यहाँ प्रवेश करा दिये जावेंगे। आषाढ बदिमे यहाँ नवीन पाठारम्भ होगा, उसी समय यहाँ आ जाना चाहिये। पण्डित अजितकुमारसे दर्शनविशुद्धि। पौष सुदी ८ स० १९९१

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी

दर्शन विशुद्धि ।

अभी यहाँ बहुत शीत पडती है। एकबार बाबाजीके दर्शनकी बडी इच्छा होती है, किन्तु मेरा शरीर भी अब शिथिल हो गया है। अत' सहसा आनेको उद्योगी नही होता। फिर बैशाखमे आनेका प्रयास करूँगा। आप जहाँ तक बने धर्मध्यानके कारणोमे ही उपयोग लगाना। आजीविकाके साधनोका भूलकर भी उच्छेद न करना। क्योकि यह काल अति निकृष्ट है। इससे आत्मप्रेमी जीवोको उचित है कि स्वतत्र आजीविकाका साधन रखे। आप वास्तविक साधु है, अत हमारी बातपर विश्वास करना। मेरा श्रीविश्वभर, उनके पुत्र तथा जो जो आपकी मण्डलीके है तथा मगतराय आदिको दर्शन विशुद्धि। श्रीयुत अजितकुमारजी शास्त्रीको दर्शन विशुद्धि। निरन्तर स्वाध्यायमे दत्तचित्त रहना, बाबाजीसे कहना खतौली और शाहपुरको छोडकर अन्यत्र न जावे।

●

श्रीयुत महादेवीजी योग्य—

बाईजीका स्वास्थ्य पूर्वसे क्षीण है। एक तोला भी अन्न नहीं लेती। थोडा अनारका रस व अगूरका रस लेती है। प्रतिदिन डोली पर बैठकर मन्दिर जाती है। नित्य नियम कर जल लेती है। किसीसे प्रेम नही। मुझे कुछ गद्‌गदता आ गई। कहने लगी यही वस्तु ससार है। मेरी किसीसे ममता नही। मेरा शरण मेरी आत्मा है, यही मुझे निश्चय है, व्यवहारमे पच परम गुरु शरण है। समय पर नित्य-नियमक्रिया करती है। ४॥ बजेके बाद जल त्याग देती हैं। कितनी ही वेदना हो पर 'हा' नही। क्योकि उनका मुख ज्योका त्यों है। कोई विकृति नही। धारणा भी ज्योकी त्यो है। केवल सासकी वेदना है। अब कफ नही, ज्वर भी नही। बाबाजी महाराजसे

प्रणाम कहना। महाराज, खतौलीको छोडकर अन्यत्र कही न जाना। मै बाईजीको आराम होते ही एकबार आपके दर्शन फिर करूंगा। श्रीयुत् पसारी त्रिलोकचन्द्रजी से तथा लाला विश्वम्भर, हुकुमचन्द-जी तथा खचेडूमल आदि सर्वको दर्शन विशुद्धि। बाईके स्वास्थ्य लाभ होने पर अवश्य आऊँगा। जब तक मै न लिखू किसीको न भेजना। श्रीयुक्ता दादीजी तथा डाकखाने वाली व गढीवालीसे दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। जहाँ तक बने, शान्तिके साथ धीरताका भी अवलम्बन करो। इसमे महती शक्ति है। कल्याणकी भूमि है। बाह्य व्रतादिकोमे जब तक आभ्यन्तर भावका समावेश न होगा केवल कष्टप्रद ही होगे। बाह्य जीवकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे जो दयाका उपयोग करते हैं उन्होने दयाके स्वरूपको ही नही समझा। जब यह प्राणी अपनी आत्माको इस ससारमे नाना आपदाओसे वेष्ठित देख कर वास्तविक ज्ञानी होता है, तब उसी जीवको अनेक विभावोंसे अपनी रक्षा करनेका सतत् प्रयास करना पडता है। प्रथम शत्रु तो इसका सर्वसे प्रबल और सर्व विभावोकी रक्षा करनेवाला अनात्मविश्वास है, जिसको लोगोने मिथ्या शब्दसे व्यपदेश किया है। जब तक यह अनात्मश्रद्धा इस प्राणीके है तब तक पर पदार्थोंमे इष्टानिष्ट कल्पनाकी पाशसे यह कभी मुक्त नही हो सकता। अत सब कार्यके प्राक् हमे दृढताके साथ स्वात्मबोध करना चाहिये कि मै हूँ। जब तक अपनी सत्ताका निर्णय नही होगा तब तक अन्धकारमे मुष्ठि-अभिघात के सदृश हमारे प्रयत्न होगे। इत्यादि आपत्तियोंसे सुरक्षित करने के लिये मैं हूँ,

यह अनुभव दृढ होना ही हमारे भावी कल्याणका निदान होगा। यद्यपि आबालगोपाल यह सबको विदित है कि हम हैं परन्तु मिथ्याज्ञानके आवेशमे उसकी ओर लक्ष्य नही देते। अत सर्व प्रयत्नोसे मुख्य प्रयत्न आत्मप्राप्तिकी ओर होना चाहिये। बाह्य व्रतोकी उतनी ही आवश्यकता है जिससे आभ्यन्तरकी रक्षा हो, यदि आभ्यन्तरके अर्थ प्रयास नही तब सकल क्रियाकाण्ड आडम्बरमे परिणत हो जाता है। जहा तक बने सर्व बाह्य प्रयत्नोका उद्देश्य स्वात्मोद्देश्य ही हो। स्वाध्यायरूप कार्यका मुख्य फल भी वहा है। स्वाध्याय तथा ध्यानका फल भी वही है। आजीविकाका साधन आत्मघातक नही। अन्यायोपार्जित धन स्वात्मस्थितिमे बाधक है। जैसे मुनिको शरीर स्थितिके अर्थ भोजनादि क्रिया बध साधक नही, वैसे ही गृहस्थसम्बंधिनी न्यायोपात्त क्रिया बधजनक नही। इसका यह तात्पर्य नही कि स्वच्छन्दतासे प्रवृत्ति की जावे। विशेष तत्त्वकी मीमासा तो स्वय होती है, पर तो निमित्त मात्र है। हमको प० परमानन्दजीने कहा कि आपका विचार शिखरजी यात्राका है। क्या यह सत्य है—उत्तर देना।

●

श्रीयुत महाशय लाला हुकुमचन्दजी तथा लाल त्रिलोकचन्द्रजी
योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। बाईजी दवाई प्राय नही लेती, शरीर अत्यन्त दुर्बल है। रात्रि दिन स्वास चलती है। किन्तु उनकी धारणा और स्मरणमे कोई अन्तर नही है। धर्ममे सावधान रहना यह असाधारण बात है। बाईजीके कारण मै यहाँ हूँ। अन्यथा एक मिनिट भी अब गृहस्थोके समागममे नही रहना चाहता हूँ। बाबाजीके समागममे रहना अब मेरा नियम है। इनके स्वस्थ या अन्त होते ही सागर छोड दूँगा, बाईजीका शरीर अत्यन्त क्षीण

है। वह बाहर नही जा सकती। एक तोलासे अधिक भोजन नही होता। उन्होंने प्राय: एक मासको बाह्य जानेका त्याग कर दिया है। तथा वह स्वय बैठ भी नही सकतीं। अत: अभी आपका आना अच्छा नही। आप जो तिस्साके हकीम हैं उनसे दवाई पूछ कर लिखना। और वह दवाई जो आपने लिखी थी यहाँ पर नही मिलती। पुरानी चीजे लाभकी नही। चिन्ताकी बात नही, जो होना होगा, होगा। मेरा बाबाजीसे इच्छाकार। उन्हे बाहर न जाने देना। यहाँ पर कद्दू आदिका तेल नही मिलता। कल्याणका कारण तो परमात्मस्नेह है।

●

श्रीयुत महानुभाव बाबाजी

योग्य इच्छाकार।

बाईजी समाधान है। शरीर अत्यन्त दुर्बल है। अन्न एक तोले से अधिक नही। अस्थि पजर रह गया है। २४ घटा बैठी रहती है। ज्ञानमे कोई अन्तर नही, किसीसे ममत्व नही। नि शल्य हैं। यदि बच गईं तब भी त्यागका विचार कर लिया है। यदि अन्त हो गया तब एक खड वस्त्रके सिवाय सर्व परिग्रह छोड दिया है। अर्थात् समाधिके समय एक वस्त्र रखेगी।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आपका पत्र नही आया। इससे पत्र नही देना था, परन्तु अन्तरगकी मनोवृत्तिने ऐसा करनेसे रोक दिया। आप सानन्द होगे। स्वाध्याय ही परम तप है। अत उसका दृढ अध्यवसाय ही परमपदकी प्राप्तिका मुख्य उपाय है। निरन्तर व्यग्र नही रहना चाहिये।

व्यग्रता ही बधकी जननी और बधकी सुता है। आप लोग जहाँ तक हो अब थोडे दिन शान्तिसे वही स्वाध्यायमे चित्तको लगाइये। बहुत ही सुखद परिपाक इसका होगा। (क्षेत्रमे उत्कर्ष तो आत्माके परिणाम आधीन है।) हम लोग पर पदार्थमे उत्कर्ष और अपकर्षकी जन्म भर समालोचना करते है और हम कौन हैं ? इसकी ओर दृष्टिपात नही करते। फल यह होता है जो आजन्म ज्योके त्यो ही नही, किन्तु छब्बेके स्थानपर दुबे हो जाते हैं। अत निरन्तर स्वकीय भावोकी उज्वलता बनानेकी चेष्टामे यत्न रत रहना ही मोक्षाभिलाषी प्राणियोका मुख्य कर्त्तव्य है। क्या परकी उत्कर्ष कथामे पुराणोको मनन करनेसे हम उत्कर्षके पात्र हो जावेगे ? नही। किन्तु उस मार्ग पर आरूढ होकर यदि हम मन्दगतिसे भी प्रति समय गमन करेगे तब एक दिन वह आवेगा जो हमारी उत्कर्षताकी कथाके एक दिन हमो दृष्टान्त होकर अनादि मत्र द्वारा मोक्षाभिलाषियोके स्मरण-विषय होगे। अब आप लोगोको अनादि अज्ञानजन्या कायरताको कृश करना ही पडेगा। कृश क्या, अभाव करना होगा। इसमे हीन पुरुषार्थ वालोकी गणना नही, हमे दृढ श्रद्धा जब आत्मतत्त्वकी है तब क्या दुष्कर है। (तदुक्तम्)

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभि ।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षण कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्मह ॥

इसका अर्थ समयसारके कर्तृकर्माधिकारमे देख लेना। सम्पूर्ण मण्डलीसे धर्म प्रेम और सलावा वाले प० हुकमचन्द्रजीसे तथा प० शीतलप्रसादजोसे, लाला विश्वम्भरदाससे दर्शन विशुद्धि। पर तो पर है, फिर क्या मै पर नही, आप पर नही। क्या श्री सिद्धादि पच परमेष्ठी पर नही। परसे निजका क्या सम्बन्ध, जब ऐसी वस्तुमर्यादा है तब अपनी अल्प शक्तियोके द्वारा जो यह भान हो रहा है, वहाँ चलो, तहाँ चलो, यह देखो, वह देखो, जो विकल्प जाल फैला है। एक बार दृढतम श्रद्धाकी पैनी असि पटको, जिससे मोहान्धकार मिट

जावे और निजानन्द जो इसने छिपा रखा है, प्रगट हो जावे। बहुत-से महाशयोके श्रीमुखसे निरन्तर यह गाथा गाई जाती है, भाई ससार तो दु खरूप है, इसमे सुख नही। अर्थात् दु ख ही है, अस्तु। तत्त्व-दृष्टिसे इस विषयकी मीमासा कर निष्कर्ष सिद्धान्त विचारो, क्या है। यदि ससारमे दु,ख ही है तब क्या यह नित्य वस्तु है, नहीं, क्योकि दु ख-पर्यायका विध्वस देखा जाता है और प्रयास भी प्राय प्राणियो का निरन्तर इसके विरुद्ध विकासके अर्थ रहता है, इससे भी सिद्ध होता है यह वस्तु अस्थायी है। जब ऐसी वस्तुस्थिति है तब ससारमे दु'ख है। इसका यह आशय है कि आत्माके आनन्द नामक गुणमे मोहज भाव द्वारा विकृति आगई है वही आत्माको दु खात्मक वेदन कराती है। जैसे जब कामला रोग हो जाता है तब कामली श्वेत शखको भी पीत भान करता है, असलमे शख पीत नही। इसी तरह मोहज विकारमे आत्मा दु खमय प्रतीत होता है, परमार्थसे दु खी नही। श्रीधर्मदासजीसे हमारी दर्शन विशुद्धि कहना। और कहना कि भाई धर्मदासजो यह रोग-वेदना असातोदयनिमित्ता है, स्वाभाविकी नही। इसके उदयमे यदि समता रही तब यहा भी आनन्द और परभवमे भी आनन्द। यह अल्पकाल अस्थायी वस्तु है, इससे आकुलित हो नित्य चिदानन्दको कलुषित नही करना चाहिये। आप तो धीर और विशिष्ट ज्ञानी हैं, कदापि इसके द्वारा चचल नही हो सकते। मुझे तो यह विश्वास है, अब अवसर इस पिशाचिनोके अन्तका आ गया है। ऐसी विज्ञानमयी असि धाराका पात करिये जो इसको कुछ कालके लिये बेहोशी आजावे। जब यह शत्रु बेहोश हो जावे तब आप मोहज भावोका क्रमसे न्यूनतम करनेका प्रारम्भ कर दीजिये, जब तक वह फिर चैतन्यावस्थाको प्राप्त हो, फिर उसी असिधारा द्वारा घायल करिये, अन्तमे कुछ पर्यायोके बाद जब पूर्ण सामग्री प्राप्त हो जावे तब फिर इन मोहज भावोको नाशकर सुखसे रहिये। अनाथिनी होकर आपसे आप उसका नाश हो जावेगा। श्री देवीजीको

यदि पत्र डालो तब दर्शन विशुद्धि लिखना। बाबाजी सानन्द हैं और बुढिया मासे दर्शन विशुद्धि कहना।

●

श्रीयुत त्रिलोकचन्द्रजी

दर्शन विशुद्धि।

हम गया पहुँच गये, फागुन बदी १२ को श्री १००८ गिरिराज जायेगे। आप धर्मका मुख्य तत्त्व अपनेमे ही देखना। निमित्त कारणो पर निर्भर न रहना। यह मूल मत्र निरन्तर स्मरणीय रखना। राग द्वेष निवृत्ति जहा हो वही आत्मा परमात्मा है।

●

श्री त्रिलोकचन्द्रजी

आशीर्वाद।

पत्र न आया, समाचार न जाने। सयमसे रहना ही सुख और शान्तिका सत्य उपाय है। ज्ञानार्जनका फल भी वही है परन्तु यह जीव अनादि कालीन वासनाओ द्वारा इस तरहका व्यग्र रहता है, जो परमार्थिक सुखका मार्ग है, उसका पथिक बननेसे भयभीत रहता है। निरन्तर नाना प्रकारके अनुचित और अनुपादेय कार्योंमे अपने पवित्र ज्ञानका दुरुपयोग कर देता है। अत सबसे उत्तम यही उपाय है जो योग्य साधन कर स्वाध्यायमे काल लगाते हुए जीवन-यात्राकी सफलता करना और आकुलता न करना। मेरा आप लोगोसे सम्बन्ध इसी अर्थ है। पत्र देनेका कारण आपकी कुशलताका न मिलना है। श्री खचेडूमल आदि सब सानन्द होगे। श्री हुकुम-चन्द्रजी भी सानन्द होगे। तथा लाला विश्वम्भरदासजी तथा लाला भगतरायजी आदि सबसे दर्शन-विशुद्धि। ससारमे सबसे बडा बधन मोह है। इसे मेटनेकी आवश्यकता है। परसे कल्याणकी

आशा आकाशसे पुष्प चयनकी तुलनाके समान निरर्थक है। व्यर्थके झझटोमे पडना आयुकी निस्सारता है। केवल स्वाध्यायकी उत्तमता पर ध्यान रखो और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुकूल त्याग करो।

●

श्रीयुक्त महाशय प० शीतलप्रसादजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। श्री हुकमचन्द्रजीका स्वास्थ्य अच्छा होगा। ऐसा ही होना था। आप इन्हे सन्तोषका पान करावे। जो पर्याय होजावे उसपर विशेष ऊहापोह करना सर्वथा अयोग्य है। भविष्यका प्रयत्न करे। अतीतका प्रतिक्रमण ही होता है। भावी जीवन सुधारनेके वक्त धीर और गम्भीर तथा कार्यानुकूल प्रयत्न की महती आवश्यकता है। हम श्रेय-प्राप्तिके अर्थ निरन्तर आकुलताके पात्र रहते हैं। क्या करे ? कहाँ जावे ? किसकी सगति करे ? इत्यादि शुष्क तर्कोंमें अतिदुर्लभतासे प्राप्त मनुष्य जन्मकी महत्ताको व्यर्थ ही भस्मीभूत कर देते है। इतना ही नही, आगामी उसकी प्राप्तिके अपात्र अपनेको बना देते हैं। अत मेरा तो आप लोगोसे यह कहना है, जो इस सकल्प जालको उच्छेदकर सतत धीरता और वीरताके साथ रागद्वेष आदिकी सेनाका निर्भीक होकर ऐसा सामना करना चाहिये कि फिर वह सास न लेवे। जो शिल्पकार जिस महलको निर्माण करता है, उसका ध्वस करना उसे क्या कठिन है ? तद्वत् यह रागद्वेष हमने अज्ञानसे ही उत्पन्न किये थे। अब इनके प्रलय करनेके लिए हमे विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नही। केवल इतना जान लेना ही उनके नाश करनेका उपाय हैं। यह मानी हुई बात है। जिस वस्तुका हमको यथार्थ ज्ञान होगया उसका फल उपेक्षा ही है। वस्तुके जाननेका वास्तविक फल तो अज्ञान निवृत्ति है। यह त्यागने योग्य है, यह ग्रहण योग्य, यह उपेक्षणीय है, यह सर्व मोहके सद्भावमे हैं और सद्भावमे ही प्रवृत्ति

होती है । अत पदार्थोंको जान कर यदि हमारे भाव निरन्तर यही कल्पना करते हैं कि कैसे हमारा कल्याण होगा ? तब हमारी समझमे नही आता'हमारे ज्ञानने क्या किया ? अत सर्वकल्पनाओको छोडकर निरन्तर स्वाध्यायमे कालका सदुपयोग कर शान्तिका अनुभव करिये । यह शान्ति अन्यत्र नही, सन्निहित ही है । अनादि कालसे इस आत्माकी इन पर पदार्थोके सम्बन्धसे यह इस प्रकार की निर्बलताकी प्रकृति होगई है जो निरन्तर पर वस्तुजातसे ही अपना कल्याण और अकल्याण मानता है । असल मे यह नही । कथचित् कर्मजन्य पराधीन दु ख और सुखमे यह सम्भावना हो सकती है । वास्तविक वहाँ भी यह तथ्य परीक्षामे उत्तीर्णताको नही पा सकता, किन्तु पारमार्थिक सुखमे इन पर वस्तुओके आलम्बनकी गध भी नही । फिर हम ऐसे दुर्बल हो रहे है जो निरन्तर वही राग अलाप कर शुद्धतत्त्वसे च्युत हो रहे है । पुरुषार्थके समय कर्मोदयकी एकात वासनासे दूषितान्त करणवृत्तिके द्वारा उन्मत्त पुरुषके सदृश आलाप कर वस्तुस्वरूपके लोप करनेमे पुरुषार्थको रतार्थ कर धन्यवादके पात्र होनेकी प्रतिज्ञा करनेमे सकोच नही करते । ऐसे असिद्धाचार कहाँतक श्रेयोमार्गके पोषक हो सकते है । अत मेरी आपके विषयमे यही सैद्धान्तिक सम्मति है,—जो आपकी समस्त मण्डली किसी विशेष अवसर पर हस्तिनापुर जाकर तत्त्व विचारमे निमग्न होकर स्वय निर्णय कर रागद्वेषके निपातका उद्यम करे । स्वय विचारधारा उसी योजनामे लगा देना ही श्रेयोमार्गकी रुचि है । रुचि क्या, आशिक श्रेयोमार्ग ही है । यहाँ पर अब १२ मास और मेरा रहनेका निश्चय हो गया है । सूरजमलने ६००००) का मकान, जिसका भाडा १००) मासिक है, शान्तिनिकेतनके रक्षार्थ दे दिया । मेरा विचार अब गृहस्थोके समुदायमे रहनेसे भयभीत होता है । आपकी जो मण्डली है, उसके यावत् सदस्य हैं, सर्वसे धर्म-प्रेम ।

●

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

ससारमे सबसे प्रबल बन्धन करनेवाली लोभ कषाय है। उसीके द्वारा जगत एक दूसरेको वश करनेका प्रयत्न करता है यद्यपि आप और हम सर्व साधारण इस बातको जानते है कि परिग्रह सबसे अधिक सतापकारी वस्तु है, फिर भी जब परस्पर बात करेगे, तब यही सार उसका होगा। काल निकृष्ट है। कुछ अर्जन करके ही धर्म-साधन अच्छा होगा। सब दान मत कर दो। अन्यथा कोई सहायक नही, सब हँसी उडायेगे। मैने आजन्म एक पैसा भी अर्जन नही किया। श्री स्वर्गीय बाईजीके द्रव्य द्वारा निश्चित रहा। फिर भी लोगोका यही कहना था कि देखो, हाथ सकोच करो। अन्यथा पश्चात्ताप करना होगा। बाईजी, पैसेकी रक्षा करो, प० जी तो कुछ विचार नही करते, तुम तो कमाती नही। यही काम आवेगा। बाईजीका उत्तर था, जबतक हम है भैयाकी इच्छा जो करे, हमारी पर्याय बाद तो इस धनकी रक्षा होना नही। फिर भी ८०००) रुपया नकद छोड गई। वही हुआ जो उनने कहा था, मैने उनके बाद सब दे दिया। ५००) रुपया शेष था। वह भी वरुआसागरकी पाठशालाको दे दिया। यह सब किया। परन्तु शान्तिका उदय नही हुआ। होता कहाँसे ? क्योकि अन्तरगसे लोभ कषायका अभाव नही हुआ। जबतक परिग्रह-लिप्सा है, तबतक लोभका त्याग नही। विषय-सेवनमे अभिलाषा मूल है। यदि विषय-सेवन नही भी करे और अभिलाषाका त्यागी नही, तब विषयका त्यागी नही, इसी तरह प्रमादके सद्भावमे जीवोंके घात न होने पर भी अहिसक व्यपदेशको प्राणी नही पा सकता। तात्त्विक मूर्छाके अभावमे ही शान्तिका उदय होता है। दान करनेका यही उद्देश्य था जो हम मूर्छाके अभावका फल आस्वादे। यहाँ उल्टा होता है। दानके करनेमे द्रव्य तो जाता ही है, साथ ही मान कषायकी पुष्टि हो जाती है। इसी

प्रकार धर्म पोषक जितने भी कार्य आचार्योंने प्रतिपादन किये हैं, सबका सार अन्तरग शान्ति था। फिर भी धार्मिक कार्य करके भी हमे शान्तिको आस्वाद नही आता। आवे कहाँमे ? हम जो कार्य धर्मका करते है, उसमे हमारा अभिप्राय कषाय पुष्टिका हो जाता है। इसीसे महर्पियोने कहा है,—"जो कार्य करो उसमे अहं बुद्धिको न आने दो—" ऐसा होना असम्भव नही। तथाहि—

> त्यक्त येन फल स कर्म कुरुते, नेति प्रतीमो वयम्
> किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि कर्मावशेनापतेत्।
> तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो,
> ज्ञानी कि कुरुतेऽथ कि न कुरुते, कर्मेति जानाति क ॥

परन्तु यह बात बनानेसे नही बनती, यह तो कर्म कृत नही किन्तु क्षयोपशम जन्य है। क्षयोपशम जन्यसे तात्पर्य मोहनीय कर्मके उपशमादिसे है। यद्यपि हमारा कर्तव्य पुरुषार्थ करनेका है। वस्तु-प्राप्ति भवितव्यताधीन है। फिर भी निरन्तर आगम ज्ञान ही उसका मूल है। देखो—

> शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्व समुत्पश्यतो,
> नैक द्रव्यगतञ्च क्वास्ति किमपि द्रव्यान्तर जातुचित्।
> ज्ञान ज्ञेयमवैति यत्तु तदय शुद्धस्वभावोदय,
> कि द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जना ॥

अर्थात् तात्त्विक पदार्थोको जाननेवालोका यह कहना है कि एक द्रव्यके अन्तर्गत अन्य द्रव्यका प्रवेश नही। ज्ञान ज्ञेयको जानता है, यह उसके शुद्ध स्वभावका ही उदय है। द्रव्यान्तर उसमे प्रवेश हो गया, ऐसा नही। फिर भी द्रव्यान्तर चुम्बन द्वारा आकुलित बुद्धि होकर यह सामान्य जन तत्त्वसे च्युत होकर अनन्त ससारकी यातनाके पात्र बनते है। परिग्रहका सग्रह ही हमे दु खदायी है। परन्तु इतनी हीन शक्ति है जो उसके त्याग करनेमे असमर्थ हैं।

बाईजीके सामने हमने अनेक बार छोडनेका प्रयास किया, किन्तु बाईजीने यही उत्तर दिया, जो तुम्हारी इतनी विरक्तता नहीं, व्यर्थको दु खी होगे। हमारे जीवन बाद छोडना। परन्तु आज वह शब्द इतने मार्मिक प्रतीत होते है जो उपदेष्टाका कार्य कर रहे हैं। अत हमारा आपसे यही कहना है जो सहसा त्याग न करना। त्याग परिग्रह-बाधक नही, प्रत्युत साधक ही है। हमारी प्रवृत्ति देखो, जो निजका तो छोड दिया। परन्तु फिर भी सग्रह नही छोडा। कहीसे घी, कहीसे कुछ इत्यादि। अनर्थ परपराका सम्बन्ध नही छूटता। लाला हुकमचन्द्रजी व श्री विश्वम्भरदास व लाला खचेडू-मल व लाला मगतराय आदि सब सज्जनोसे दर्शन विशुद्धि। श्रीमान् प० धर्मदासजीसे दर्शन विशुद्धि। योग्य पुरुष है, तात्त्विक दृष्टि है। लाला बाबूरामजी आदिसे यथा—योग्य। बाबाजी बनारस आगये।

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

मेरा सर्व सज्जनोसे यथा योग्य कहना। मैने पोष मासमे २५ दिनका मौन लिया था। बडे सानन्दसे काल गया। अब माघ वदी ९ से आजन्मके लिये एक दिनका मौन और एक दिनका बोलना रखा है, परन्तु मार्गमे यह नियम नही, जहा रहूँ वहाँ लागू है।। क्षेत्र-वन्दनामे नही, ससारमे मनुष्यकी चेष्टा, परके कल्याणकी रहती है, निजकी ओर दृष्टि बहुत ही कम सज्जन देते है, यह लिखना भी अनवसर है।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजो,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

बेटी, ससारमे शान्ति नही सो ठीक है, परन्तु शान्तिका मूल

हम लोग ही तो हैं। क्या पुद्गल कम शान्तिका बाधक है? हमारी अज्ञानताने यह सर्व असत् कल्पना कर यह ससार बना रखा है। वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नही, औपाधिक परिणामोने यह सब उपद्रव बना रखा है। अत जहाँ तक बने उन औपाधिक भावोका यथार्थ ज्ञान करना ही मोक्षमार्गकी प्रथम सीढी है। औपाधिक भावोके त्यागके बिना हम सम्यग्दर्शनके पात्र नही हो सकते। अत ससारसे सवेग होना ही श्रेयस्कर है। क्या लिखे? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत, एक सेकेण्डमे अवबोधका विषय हो सकता है, परन्तु वचनकी प्रचुरतासे वर्षोमे उसकी यथार्थता आना दुर्गम है।

●

श्रीयुक्ता देवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

मैने पत्र बनारसको लिख दिया है। आशा है उत्तर आपके पतेसे पहुंचेगा। यदि २) रु० की जगह ३) रु० दिये जावे तब अच्छा है। मैने दो रुपयेके लिये लिखा है। बेटी, ससारमे सर्वत्र ही अशान्ति है। धन्य है उन महापुरुषोको जो इस महती अशान्तिमे शान्तिके पात्र हो जाते है। मूल कारण शान्तिका पर पदार्थसे परणति हटावे, हटानेका उपाय, उनके न्यून करनेका प्रयास है। जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा। परिग्रह ही सर्व पापोका निदान है। इसकी कृशता ही रागादिकके अभावोमे रामबाण औषधि है। बेटी, जहाँ तक बने रागादि दोषोसे ही अपनी रक्षा करना। यह अवसर अति दुर्लभ है, मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी नीरोगता उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओको विजय कर स्वात्मलाभ करना।

●

श्रीयुत बाबाजी महाराज,

योग्य इच्छाकार।

मै कार्त्तिक बाद नियमसे शिखरजी चला जाऊँगा। पहुँचनेका पत्र गयासे दूँगा। इतनी मेरी प्रार्थना है, जो खतौलीको छोडकर भूलसे भी अन्यत्र जानेका विचार छोड देना। वहाँ जैसा धर्म-साधन होता है, अन्यत्र कारणकूट उतने अच्छे नही है। जितनी शुद्धता भोजनकी श्री महादेवीजीके यहाँ होती है, उतनी अन्यत्र होना दुर्लभ है। आपका शरीर अति दुर्बल है, ऐसी अवस्थामे अन्यत्र जाना सर्वथा ही अनुचित है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

दर्शन विशुद्धि।

हमारा तो यही कहना है, जिसमे आपको शान्ति मिले और रागादिक उपक्षीण हो, वही कर्त्तव्य है। इसकी ओर दृष्टि देना ही इस जीवनका लक्ष्य है। तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है। हमारा तो ध्येय यही है, इसीसे हमने सर्व प्रकारकी सवारी छोडी है। आप जहाँ तक बने बाबाजीकी पर्याय तक वही रहने की चेष्टा करना। क्योकि आपके द्वारा जो वैयावृत्य होगी वह अन्यत्र न होगी। धर्मके मूल आशयको जाने बिना धार्मिक भाव व धर्मात्मामे अनुराग नही हो सकता। हमको एक शल्य थी, वह भी निवृत्त हो गई, अर्थात् बाईजीकी ननद, वह भी परलोक पधार गई। अब तो कुटुम्बी कहो, चाहे पिता कहो, बाबाजी महाराज है। मैने शिखरजी जानेका निश्चय कर लिया, नही तो वही आता। अब देखे, कब बाबाजीसे मिलाप होगा। दादीजीसे दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

अपनी माँ तथा भावी व भाईसे धर्म-स्नेह पूर्वक दर्शन विशुद्धि। बुद्धे फल ह्यात्महितप्रवृत्ति —बुद्धि पानेका यही फल है, जो आत्म-हितमे प्रवृत्ति करना। आत्महित क्या है ? वास्तव दृष्टिसे विचारा जावे तब दु खनिवृत्ति ही है। यावत् जगत है, इसीके अर्थ चेष्टा करता है। दु ख पदार्थ क्या है ? इसपर सूक्ष्मदृष्टिसे देखो तो यही निष्कर्ष अन्तमे निकलेगा, आवश्यकताओकी माला, ज्ञानकी आवश्य-कता क्यो होती है ? हम अज्ञानसे नाना प्रकारकी यातनाओके पात्र होते है। ज्ञान होने पर वे यातनाएँ जो अज्ञान अवस्थामे हमे बाधा दे रही थी अब नही देती। हम अर्हद्भक्ति किस अर्थ करते है ? हमारी रागादिक परिणति ऐसे परपदार्थोमे न जावे जो हमे मोक्ष-मार्गसे च्युत कर देवे तथा तीव्र रागद्वेषकी ज्वाला हमे दग्ध न कर देवे, एतज्जन्य दु खकी निवृत्तिके अर्थ ही हमारा प्रयास है। हम जो दान देते है उसका तात्पर्य यही है जो हम लोग कषायसे दु खी न होवे। हम चारित्रको अगीकार करनेका जो प्रयास करते है उसका भी मूल तात्पर्य यही है, जो हम रागद्वेषकी कलुषतासे क्लेशित न हो। लौकिक कामोमे देखो, हम भोजन इस अर्थ करते है जो क्षुधाजन्य पीडा शान्त हो। जब हमे कषाए पीडा उपजाती हैं तब अपना अकल्याण करके भी उस कषायकी पूर्ति करते है। यद्यपि विचारसे देखे तब सुखका मूल उस कषायकी हीनता है, परन्तु हमे इस प्रकारका मिथ्याज्ञान है जो हम कषायमे सुख मानते है, क्योकि सुख तो कषायके अभावमे है। जैसे देवदत्तको यह कषाय उपजी जो यज्ञदत्त हमे नमस्कार करे, जब तक वह नमस्कार नही करता तब तक देवदत्तको अन्तरगमे दु ख रहता है। एकबार यज्ञदत्तने उसे दु खी देख अपनी हठ छोड देवदत्तको नमस्कार कर लिया, इस पर देवदत्त कहता है मेरी बात रह गई। और देख, अब मै उस कषायके होनेसे सुखी हो

गया। इस पर यज्ञदत्त कहता है कि तुम भ्रममे हो, तुम्हारो बात भी गई और कषाय भी गई, इसीसे तुम सुखी हो गये। जब तुम्हे इच्छा थी कि यह नमस्कार करे और मै नही करता था तब तुम दु खी थे। मेरी हठ थी कि मै इसे क्यो नमू ? सो मै भी दु खी था। अब मेरी हठ मिटी तब मैने नमस्कार किया। उससे जो तुम्हारी इच्छा थी कि यह मुझे नमस्कार करे, दुख दे रही थी, मिट गई। अत तुम इच्छाके अभावमे सुखी हुए। मै भी हठके जानेसे सुखी हुआ। अतः ऐसा सिद्धान्त है कि अभिलाषाका जाल ही दु खका मूल कारण है, तब निष्कर्ष यह निकला सुख चाहते हो तब इच्छाओको न्यून करो यही सदेश आत्माका है। अब वैशाख सुदी १५ तक पत्र न दूँगा।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

जिस जीवकी आयु एक कोटि पूर्वकी है और उसे आठ वर्ष बाद केवली या श्रुतकेवलीके निकट क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई,

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबधयारभया णरा केवलीदुगते ॥

इस गाथाके अनुकूल उसने तीर्थकर प्रकृतिका बध प्रारम्भ कर दिया। आठवे अपूर्वकरण तक बराबर यह बध होता रहा अन्तमे उपशम श्रेणी माडकर ग्यारहवे गुणस्थानमे आयु पूर्ण होकर तेतीस सागर सर्वार्थसिद्धिमे आयु पायी, वहॉ भी बराबर बध होता रहा, वहॉके बाद फिर यह कोटिपूर्वका आयुवाला मनुष्य हुआ, वहाँ भी अपूर्वकरण तक यह प्रकृति बधती रही, बादमे लोभ नाशकर क्षीण-मोह हो अन्तर्मुहूर्त बाद केवली हुआ। तेरहवें गुणस्थानका काल पूर्ण

कर चतुर्दश गुणस्थानका समय पूर्णकर मोक्ष हुआ। अत इस काल-की विवक्षा न की और न पूर्व अपूर्वकरणके बाद कालकी विवक्षा की। सागरोके सामने यह कोई काल नही। तारतम्यसे बिचारा जाय तो यह अन्तर अवश्य है। तीर्थंकर प्रकृतिवाला यदि पच कल्या-णकधारी होनेवाला है तब तो इस जन्मसे दो जन्म धारण कर मोक्ष जावेगा और जो दो कल्याणक व तीन कल्याणकधारी होते हैं वे उसी भवसे मोक्ष जाते है। यदि सम्यक्त्वके पहिले नरकायुका बध कर लिया हो तो तब तीसरे नरक तक जा सकता है। तीर्थकर प्रकृतिके बध होनेके बाद आयु बन्ध होवे तब नियमसे देवायु ही का बध होवे। जो दयाभाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तब तो नियमसे दर्शन-मोहका चिन्ह है। सामान्य मोहके उदयमे करुणाभाव मिथ्यादृष्टियोके भी होता है और सम्यग्दृष्टियोके भी होता है। सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमे लिखा है। जब उपरितन गुणस्थानमे चढनेकी अशक्यता है तब अपने उपयोगको इन कार्योंमे लगा देता है। मिथ्या-दृष्टि अहम् बुद्धिसे कार्य करता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणाभाव चारित्रमोहादिके उदयसे ही होता है। किन्तु जब मिथ्या-दर्शनउदय मिलित चारित्रोदय होता है, तब दर्शनमोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरहसे वैरभाव या मित्रभाव सर्व चारित्र-मोहके उदयमे होते है। परन्तु मिथ्यात्व आदिमे सर्व मिथ्यादर्शनके सहचारी कह दिये जाते है। वैरभाव द्वेषसे होता है। अत पञ्चा-ध्यायोमे यह कह दिया कि मिथ्यात्वके बिना यह नही होता। किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्वका अनुभावक है, वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्वका अनुभावक है। अत दर्शनमोहके उदयमे न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनो भाव चारित्र-मोहके उदयसे ही होते है।

•

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, आजतक इस ससारमे किसी भी तत्त्वज्ञानीने बाह्य ऐसा उपाय नही निकाला जो उसका आश्रय लेकर ससार-यातनाओसे पीडित आत्मा शान्त हो जावे। हमलोग निरन्तर इसी खोजमे लगे रहते है कि कोई ऐसा अमोघ बाण मिल जावे जो कर्मशत्रुको चूर्णकर हमे शान्तिमार्गका फल तत्काल मिल जावे, निरन्तर इसी अन्वेषणमे लगे रहते हैं। तथा सहस्रावधि पुस्तके और महात्माओका ससर्ग करते हैं। अन्तमे निराश होकर या तो अश्रद्धा करते है या यह मान लेते है कि अभी हम अज्ञानी है। यह सर्व हमारी भूल है, क्योकि वास्तवमे बाह्यमे कोई मार्ग ही नही, जो महापुरुष बताते। महापुरुषोने शान्तिका मार्ग आत्मामे बताया है। हम पुस्तको और बाह्य तोर्थोमे खोजते है। अब आप ही बतलाइये, क्या आप इस तरह व्यर्थ प्रयास कर मोक्षमार्ग प्राप्त कर सकेगे ? नही, इन निमित्तोकी मुख्यताको गौणकर निजमे निहित जो मार्ग है, उसे प्रकट करो, बाह्य वस्तु उतनी बाधक नही जितनी कायरता घातक है। हम निरन्तर व्यर्थकी चिन्ता करते हैं। इसमे कुछ सार नही।

क्या दुकान और खतौली छोडनेसे मोक्ष-मार्ग मिल जावेगा ? आजकल प्राय वचक लोग ससारमे हो गये है। जब कही जाओगे पता चलेगा। ऐसी उत्तम शैलीको छोडकर व्यर्थके झगडेमे पड जाओगे और अन्तमे पश्चात्ताप हाथ रह जायगा। अत दुकानका परिमित समय नियत कर शेष काल धर्मध्यानमे लगाओ, अथवा जो बडे बडे विद्वान् हैं उनसे पूछो भाई साहिब। आपलोग शान्तिका उपाय बतलावे। जो वे बतावे उनसे कहना आप भी इसपर चले, तब यही उत्तर मिलेगा (चारित्रमोहका उदय है)। अस्तु, यदि आपके परिणाम विरक्त हैं, तब वहीं उनका सदुपयोग करो। जो अतीत

काल गया, जाने दो। जो वर्तमानमे परिस्थिति है उसपर चलो। आप और हमलोगोकी यह चेष्टा रहती है कि बिना त्याग मुनिदशाकी शान्ति आजावे। यह चेष्टा उष्ण जलमे शीत स्पर्शकी चाहके तुल्य है। अत सिवाय दु खके और क्या मिलेगा? अत पर्यायपर दृष्टि देते हुए परिणामोको जातिको मिलान करो, अनायास शान्त हो जावेगा। हमको भी इसी तरह व्याकुलता रहती थी कि हा! कुछ कुछ नही हुआ परन्तु अन्तोगत्वा यही निश्चित सिद्धान्त कर लिया, करते जाओ, एक दिन अवश्य उत्तम फल मिलेगा (कारज धीरे होत है काहे होत अधीर। समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर)॥ मेरी श्री प० शीतलप्रसाद व श्री हुकुमचन्द, श्री प० धर्मदास व लाला विश्वम्भरदास, व लाला बाबूलाल, व श्री खचेडूमल आदि सज्जनोसे दर्शन विशुद्धि। (मण्डलीको सुना देना)।

●

लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

दर्शन विशुद्धि।

हम गर्मीकी बाहुल्यतासे यहाँ आगये, तथा आजकल यहाँ पर श्री दिगम्बर जयकीर्ति मुनि भी आए है। साथमे मुनि क्षुल्लक आर्य्या ब्रह्मचारिणी आदि परिवार भी है। अब कलिका प्रभुत्व है। लोगोमे जो विवेक है उसका वर्णन करना बुद्धिगोचर नही। भगवद्दिव्यज्ञानमे जो देखा है, होगा, इसीमे सतोष है। आत्मगत दोषोको पृथक् करनेकी चेष्टा ही श्रेयस्करी है। अन्यको समालोचना केवल पर्यवसानमे दु सस्कारका ही हेतु हो जाती है। यदि हमलोग निज ओर देखे तब इतने परिश्रमकी आवश्यकता है जो परके गुण-दोषोको जाननेका अवसर ही न आवे। जब स्वात्मरसका आस्वाद आजाता है तब अन्य रसका विचार ही नही रहता। परन्तु यहाँ तो अनादिसे पदार्थान्तरकी समालोचनामे ही यह जीव अपना गौरव समझ रहा

हे । उसे पृथक् कर अब तो स्वात्महितमे ही रत होना श्रेयोमार्ग है । अभी कुछ दिन यहाँ रहनेका विचार है । यहाँ गर्मी कम है । लू नही चलती । सत्सग का अभाव है, भाग्य भी तो मद है, सत्सगका लाभ पुण्योदयसे होता है, पुण्योदय मद कषायसे होती है । यहाँ तो अन्तरङ्गमें क्रोधाग्नि जल रही है । शान्ति कहासे आवे ? अस्तु, आत्माकी तथ्य श्रद्धा क्रोधाग्नि क्या अनन्तमिथ्यात्वको शान्त करनेमे समर्थ है, परन्तु वह तो हो तब तो बात बने । होना कोई कठिन नही है, केवल उद्देश्य बदलना है । सर्व मंडलीसे दर्शन विशुद्धि । यदि बाबाजी हो तो इच्छाकार ।

●

श्रीयुत लाला शीतलप्रसादजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

सर्वसे उत्तम कल्याण उन्ही जीवोका होता है जो पर पदार्थके गुण-दोष विचारनेमे उपयोगको नही भ्रमाते । बन्धुवर ! अन्यकी कथा तो बन्धजनक है ही परन्तु अर्हत् भगवानकी कथा भी वही है । कथाके श्रवणादिसे रुचि होती है इतना ही लाभ है, उस रुचिकालमे जिन महानुभावोने राग-द्वेषकी शृंखलाके तोडनेका अधिकार प्राप्त कर लिया वही मोक्षके पात्र होते है । आप स्वय विज्ञ हैं । यातायातमे कुछ लाभ नही । अबकी बार यहाँ पर कई ऐसे विरुद्ध कारण है, जो आप लोगोको अनुकूल न होवेगे । दस्सोकी बाबत हमसे कुछ नही पूछना । आपसे मेरा यही कहना है जो ज्ञानाभ्यासका फल रागद्वेषकी कृशता है, अत उसकी ओर लक्ष्य रखना । लाला मङ्गलसैनको भी सान्त्वना देना । जीव अपने ही परिणामोकी कलुषतासे ससारी है । कलुषता गई, ससार गया ।

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, वचन तो किसीके हो, वचन ही है, अच्छे-बुरे, यह भी परजन्य कल्पना है। यह कल्पना जिस दिन पृथक् हो जायगी, अनायास कल्याण हो जायगा। एक स्वरूप समवस्थिति बिना हमारी यह दुर्दशा हो रही है। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श इनमे आत्मधर्मका लेश नही। अतएव इन्हे जानकर हित कल्पना जैसे मिथ्या है, वैसे अहित कल्पना भी मिथ्या है। हिता-हितका सम्बन्ध आत्मपरिणामोसे है। जहाँ तक आत्मपरिणामोमे परकी परतन्त्रताका अवलम्बन है, वहाँ तक हितकी गन्ध नही। इसके विरुद्ध जहाँ पर स्वपरिणामकी स्वच्छता है वही निजहित है। जैन शास्त्रोको मनन कर इस अन्तस्तत्त्व तक अवश्य दृष्टिपात करना चाहिये। अन्तस्तत्त्व ही यथार्थ कल्याणका पथ है। मर्यादा रहित काल चला गया और इसी तरह स्वात्मदृष्टि अवबोध बिना जगत् मात्रके प्राणी इसी रूपसे काल व्यय कर रहे है। एकबार भी यदि प्राणी अपनी ओर लक्ष्य देवे, कल्याणका पात्र हो जावे, परन्तु जब उस ओर आता ही नही तब क्या सुख पावेगा ? कदापि नही। मेरी सब मण्डलीसे दर्शन विशुद्धि। मेरी सम्मति तो यह है कि इन परके विकल्पोको छोड शास्त्रका मनन ही हितकर है।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते है, फिर भी आप, न जाने, क्यो व्यग्र हो जाते है, कल्याणका पथ त्रैलोक्यमे नही किन्तु अपनेमे है, निमित्तकारणोमे कार्य नही होता, कार्यकी जननी उपादान भूमि है, व्यग्रता तो आत्मसाधक नही। मनो, वचन, कायके व्यापार

व्यग्रताके उत्पादक नही, व्यग्रताकी उत्पादक कषायज्वाला है । और हम बाह्य पदार्थोंमे व्यर्थ राग-द्वेष कर बैठते हैं। घरसे बाहर जानेमे आजकल सिवाय व्यग्रताके आत्मलाभका लेश नही होता। (दूरके ढोल सुहावने,) । त्यागकी भव्यता इसमे है जो आकुलता न होवे। आकुलता न होनेका मुख्य कारण स्वरूपश्रद्धा है। जहाँ स्वात्मज्ञान हुआ आपसे आप शान्तिरूप परिणाम हो जाता है। क्योकि जब यह देखता है, इन बाह्य पदार्थोंमे ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धको छोड कर मेरा कुछ नही, तब आपसे आप राग-द्वेष शान्त हो जाता है। रागका मूल कारण पदार्थोंमे अनुकूलताकी श्रद्धा और द्वेषका कारण प्रतिकूलताकी श्रद्धा है। जब तत्त्वज्ञानसे यह निश्चय हो जाता है कि सुख-दु ख हमारे कषायके परिणाम हैं तब अपनी कषायोके शान्त करनेके उपाय अपने हीमे देखकर निरीहवृत्ति हो जाता है। विशेष तत्त्व लिखनेका अभ्यास नही क्योकि वास्तविक तत्त्वज्ञान होना कठिन है। फिर हम जैसे अपद व्यक्तियोको तो आभास ही कठिन है। फिर भी लगे रहो, एक दिन बेडा पार होगा। जहाँ तक बने, शैली भग न करना। शेष सबसे यथायोग्य।

●

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप जैसे सम्यग्ज्ञानी भद्र प्रकृतिके नर होकर भी ससारके दु खसे भय करे, यह मेरे ज्ञानमे नही आता। जब हमने यह जान लिया, जो यह प्रकृति (रागादि परिणति) हममे होती है, वास्तविक हमारी नही, किन्तु औदयिकी है। अतएव विलयदशाको प्राप्त हो जाती है। जब ऐसी वस्तुमर्यादा है, तब हमे उसके होनेका हर्ष और जानेका क्या विषाद ? हर्ष तो तब होता है जब हमारी वास्तविक परिणति होती। विषाद तब होता जब हमारा कुछ

अपकार करती। प्रत्युत औदयिकभावके अभावमे आत्मगुणका विकास ही होना चाहिये। किन्तु खेद है हम उस लघुपनेका हर्ष तो नही करते, विपरीत अभिप्रायके वशीभूत होकर दु खी हो जाते हैं। यहाँ पर कोई कहे, रागादिकोके सद्भावमे तो दु ख हुए बिना नही रहता। यह भी हमारी मिथ्याज्ञानकी भूल है। यदि किसीका हमने ऋण लिया है और वह वादे पर माग कर हमको अनृण बना दे तब क्या हमको साहूकारके इस व्यवहारसे दु खी होना चाहिये? कदापि नही, यदि हम दु खी होते हैं तब मिथ्याज्ञानी है। इसी तरह औदयिकभाव जिस समय हो उस समय उसे कर्मकृत जान समता भावसे भोग लेना ही हमारी वीरताका परिचायक है। निमित्तकी अपेक्षा औदयिक रागादिक अनात्मीय ही है। इसकी तो कथा ही क्या? सम्यग्ज्ञानी क्षयोपशम भावोको भी सद्भाव नही चाहता। क्योकि वह भी कर्मके क्षयोपशमसे होता है। अब विचारनेकी बात है। जहाँ ज्ञानी आत्मगत भावो की अपेक्षा करके बल रूप होनेकी चेष्टामे तन्मय रहता है। भला वह ज्ञानी इन अनात्मीय दु खकर ससारजनक रागादिकोकी अपेक्षा करेगा—बुद्धिमे नही आता। ज्ञानी जीव जब रागादिकोको ही हेय समझता है, तब रागादिमे विषय हुए जो पदार्थ, उन्हे चाहे, यह सर्वथा असम्भव है। जब यह वस्तुमर्यादा है तब परसे उपदेशकी वाछा करना सर्वथा अनुचित है। परमे पर बुद्धि कर उसके द्वारा कल्याण होनेकी भावनाको छोडो। इस विश्वासके छोडे बिना श्रेयोमार्गका पथिक होना कठिन है। जैसे ससारके उत्पन्न करनेमे हम समर्थ है वेसे ही मोक्षके उत्पन्न करनेमे भी स्वय समर्थ है। जैसे—

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मन स्वस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थत ॥

आत्मा ही आत्माको ससार और निर्वाणमे ले जाता है। अत परमार्थसे आत्माका गुरु आत्मा ही है। परन्तु ऐसा कथन सुनकर

कई भाई ऐसी अन्यथा कल्पना करते हैं, जो भक्ति मार्गके विरोधी उपदेश हैं। उनसे हमारी मध्यस्थता है। जबतक कायरताकी लहर है कल्याण दूर है। अपनी मण्डलीसे हमारी दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आपके पवित्र परिणामका फल है, जो आज इस शान्त रसका आस्वाद आने लगा। अन्तरग शान्तिके आस्वादमे मूर्च्छाकी न्यूनता ही कारण है, वह प्राय उन्ही भव्य जीवोके होती है, जिनके स्व-पर-भेदज्ञान हो गया और निरन्तर पर्याय तथा पर्याय सम्बन्धी वस्तु-जातमे उदासीनरूप होकर प्रवृत्ति करते है। वे ही अल्पकालमे स्वात्मनिधिके पात्र होते है। क्या लिखे? लिखनेमे कोई स्वाद नही। मिश्रीकी मधुरता क्या देखनेसे अनुभवगोचर हो सकती है? नही, तब क्या आत्मगत शान्तिका स्वाद वचन द्वारा आ सकता है। यद्यपि वस्तुस्वरूपकी व्यवस्था इसी प्रकार है तथापि इस मोहके द्वारा अन्यथा ही यह जीव मान करता है। अस्तु, अज्ञानी जन यदि वह बात करे तब कोई आश्चर्यकी बात नही, किन्तु यदि शास्त्रके मर्मज्ञ होकर इस लीलाको अपनावे तब खेद की बात है। बाबाजीका स्मरण तो ऐसा हो रहा है जो आजन्म पीछा न छोडेगा। वे वहा रह गये यह अतिकल्याण सूचक है, यद्यपि यह अभी उन्हे कुछ बाधक प्रत्यय जान पडता होगा, परन्तु है साधक। मेरा सर्व मण्डलीसे यथायोग्य।

●

श्री महाशय त्रिलोकचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। जिसके वास्तविक तत्व दृष्टि हो गई

उसी जीवके ससारके उद्धारके अर्थ नाना कल्पनाएँ होती हैं परन्तु उनके होने पर भी वह भीतरसे दु खी नही होता। जैसे मेल गाडीसे जाने वाला मनुष्य दिल्ल।मे बैठा और मथुरा जाकर गाडी दो घटे लेट होगई उसके २ घटे असह्य मालूम होते है, फिर भी निश्चय बम्बई पहुँचेगे, ऐसा दृढतम विश्वास उसके है। आपकी गोष्ठी अच्छी है, इस पचमकालमे इतना बहुत है। इससे अधिककी इच्छा रुपयेसे गिन्नीका माल चाहनेके तुल्य है। ज्ञानका विकास वही हितकर है जो सम्यक्भावसे अलकृत हो। यदि आपको ज्ञानवृद्धिकी इच्छा है, वाराणसी रहो, सागर रहो, अथवा एक पण्डित वही रखो। जो स्वाध्यायकी रुचि है तब बहुत कुछ साधन वही है। ऊपरी साधनोंके अभावमे आभ्यन्तरकी शुद्धिको धक्का पहुँचता है। उसे आप क्या सुभग समझेंगे ? बाहर जाकर जो रेलगाडी आदिमे अपव्यय करते हो उतने हीमे एक मास अच्छा विद्वान् मिल सकता है। परन्तु हमारी दृष्टि अभी और है। आप इतने स्वाध्याय करने पर रागद्वेषकी निवृत्तिके अर्थ क्यो आकुलता करते हो। केवल उदासीनताकी यथार्थता भग न हो, इस पर लक्ष्य रखिये। यही एक दिन वीतरागता रूपमे परिणत हो जायगी। उसे आप स्वय देखेगे। अन्यसे पूछनेकी आवश्यकता नही। मेरा अपनी मण्डलीसे यथायोग्य कहना।

●

श्रीयुत महाशय बाबा भागीरथजी,

योग्य प्रणाम।

पत्र आया, समाचार जाने। महाराज ! हम तो फिर भी प्रार्थना करेंगे कि समाधिमरणके अर्थ ऐसा उत्तम स्थान खतौली है, रोहतक नही। कषायोके उदय नाना प्रकार है परन्तु आप जैसे निस्पृह व्यक्तियोके लिये नही, हम सदृश बहुतसे व्यक्ति उसके लिये हैं। आपतक उसका प्रभाव नही जा सकता। क्या ही सुन्दर पद्य श्रीमान् १००८ मानतुङ्ग मुनि महाराजने कहा है, यथा—

को विस्मयोऽत्र यदि नामगुणैरशेषैः
त्व सश्रितो निरवकाशतया मुनीश ॥
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वै ।
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥

और वास्तवमे श्री कुन्द-कुन्द मुनि महाराजने समयसारमे कहा भी है—

उदयविवागो विविहो, कम्माण वण्णिओ जिणवरेहि ।
ण दु ते मज्झ सहावा, जाणगभावो दु अहमिक्को ॥

आपकी प्रशम मूर्ति रहने पर भी यदि बलभद्र आदिने ज्ञानामृतका पान न किया, तब फिर इस स्वातिकी बून्दका मिलना दुर्लभ ही नही, किन्तु असम्भव है, अस्तु आप क्या करे ? जब जैसा होना होता है होकर ही रहता है। मेरा विचार अब ७ दिनमे १ दिन बोलनेका है, और यह नियम अभी दो मासका लूगा। यदि अशान्ति न हुई तो फिर तीन मासका लूगा। मै चाहता हूँ कि आपकी उपदेशामृत पूरित पत्रिका एक मासमे एक मिल जावे, अच्छा है। इस अवस्थामे केवल स्वात्मविषयक चर्चाको त्यागकर विषयान्तरकी कथा उपयोगिनी, नही, धनिक वर्ग धनको निज सम्पत्ति समझ रहे हैं जो कि सर्वथा विपरीत है। विशेष ईसरी जाकर लिखूगा।

●

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र नही, सो देना। जहातक बने, शान्तिसे ही धर्मसाधन करना। आकुलता न करना, आकुलता करना ही धार्मिक भावोकी बाधक है। जो मनुष्य मोक्ष मार्गके सामने हो गया वह तो सुखी ही है। अपनेको सम्यक्‌बोध होनेपर अवश्य एक दिन शान्तिका मार्ग अनायास मिल जावेगा। देखो, सर्वार्थसिद्धिके देवोको सम्यक्‌ज्ञान

तो है, परन्तु मोक्षमार्ग मनुष्य पर्यायसे होगा तब क्या उनकी आयु अशान्तिमे जाती है ? नही, अत शान्तिसे जीवन बिताना।

●

श्रीयुक्ता प्रशम मूर्ति महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। मै आजकल हजारीबाग हूँ और दो या तीन दिनमे ईसरी जाऊँगा। बाबाजीको जहातक बने वही रखनेकी चेष्टा करना। अब उनका शरीर प्राय बहुत ही शिथिल हो गया है। शिथिलतामे वैय्यावृत्यकी बडी आवश्यकता है। अन्तरङ्ग निर्मलताके अर्थ बाह्य कारणोकी महती आवश्यकता है तथा योग्य भोजनादिक भी धर्मके साधनमे निमित्त होते है। अन्यत्र यह सुभीता नही। धार्मिकभावका होना कठिन है। जिसके तत्त्वज्ञान होता है वही धर्मकी रक्षा कर सकता है। मुझे विश्वास है कि बाबाजी हमारी प्रार्थना स्वीकार करेगे। शान्तिका अन्तरङ्ग कारण जहा प्रबल होता है वहा बाह्य कारण बाधक नही होते। जहा यह जीव स्वय ढीला होता है वहा निमित्तोपर दोषारोपण करता है। बाबाजी स्वय विज्ञ हैं वे निमित्तकारणोमे शान्तिकी रक्षा करेगे। फिर भी खतौलीमे उत्तम निमित्त है जो उनके धर्म-साधनमे बाधक नही होगे। मेरी निरन्तर भावना उनके सहवासको रहती है परन्तु कारणकूट नही। यह भी उन्हीके सहवासका फल है जो मै एक स्थानमे रह गया। चित्तकी भ्रातिमे कोई लाभ नही दीखता। लाभका आश्रय स्वय है। कषायकी उपशमताका प्रयास तो करता नही। कठिन-कठिन कहकर इसको इतना गहन बना दिया है जो लोग भयभीत हो जाते है, आभ्यन्तर कषायको जिसने जान लिया है वह इसे चाहे तो दूर भी कर सकता है। पुरुषार्थके समक्ष कर्म कोई वस्तु नही क्योकि हम सज्ञी पञ्चेन्द्रिय है। यदि इस उत्तमताको पाकर हमने कायरताका

आश्रय लिया तब हमारी बुद्धिका क्या उपयोग हुआ ? केवल पर वचनाके लिये ही यह जन्म गमाया। अत जहातक बने, इन कषायोसे न दबना, इन्हे दबाना। इनका दबाना यही है, ज्ञाता-दृष्टा रहना।

●

श्रीयुत महाशय प० शीतलप्रसादजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

सर्व आपका लिखना योग्य है, किन्तु अन्तिम उपाय तो स्वय करना पडेगा, केवल समागम क्या कर सकता है। हमारी अनादि कालसे दृष्टि निमित्तोकी प्रबलतासे पराधीनताकी ओर ही अग्रसर रही है। मेरी तो यह सम्मति है कि स्वतन्त्रता पूर्वक आत्मद्रव्यकी दृष्टिमे जो पर पदार्थकी निमित्ततासे इष्टानिष्ट कल्पनाने अपना प्रभुत्व बना रखा है उसे ध्वस करो, यही मोक्षमार्ग है। अब मैने फाल्गुण मास तक इस क्षेत्रमे रहनेका निर्णय कर लिया है। स्वाध्यायमे भी आपकी श्रद्धाको तौलकर ही प्रवृत्ति करना सुखदायी है, केवल ज्ञान सपादनके अर्थ स्वाध्याय न करो। केवल शुभोपयोगके अर्थ व्रत आदि करनेकी मुख्यता न आने दो। स्वाध्यायका फल भेदज्ञान और व्रतादि क्रियाका फल निवृत्तिरूप हो, ऐसी कोशिशकी आवश्यकता है। केवल परकी रक्षा करनेसे दया नही होती, किन्तु मन्द कषायोके उदयमे अशुभ परिणामोसे अपनी रक्षा करना दया है। धनके त्यागसे दान नही होता क्योकि यह पर पदार्थ है उससे जो हमारा ममत्व-भाव गया इसीके माने त्याग है। दान तो मिथ्यादृष्टिके भी होता है, परन्तु जिस त्यागको मोक्षमार्गमे महत्त्व दिया है वह सम्यक्ज्ञानीके ही होता है। मै अल्पज्ञ हूँ, अत स्वतन्त्र लेख लिखनेमे असमर्थ हूँ। यदि अवकाश कर्मने दिया तब कभी कुछ लिखनेकी शक्ति होगी। कर्मकी प्रबलता सर्वको शक्तिशून्य बनाती है परन्तु यथार्थ श्रद्धाके सामने कर्मकी प्रबलता कुछ नही कर सकती। भाई साहब! आपकी

मण्डलीसे मेरा धर्म प्रेम कहना, पर्यायकी नश्वरताका कोई नियत समय नही। अत कोई काम करो, व्यग्र न हो। सर्व गुणका विकास स्वकीय पास है। व्यग्र होनेकी आवश्यकता नही। मेरा सर्वसे यथा योग्य।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र मिला, समाचार जाने। स्वास्थ्य पूर्ववत् है। तथा अब विशेषकी आवश्यकता नही, आवश्यकता अब अन्तस्तत्त्वमे विचार करनेकी है। परकीय पदार्थोसे परिणतिको पृथक्करण करना ही अन्तस्तत्त्वकी प्राप्ति है। अनादि कालसे अतथ्य विचारोने ऐसा आत्माको जर्जरित कर दिया है जिससे स्वोन्मुख होनेकी सुध भी नही होती। केवल वचनचातुरता छल है। जिस वचनके अनुकूल आशिक भी स्वकार्य नही किया, उसका कोई मूल्य नही। ज्ञानप्राप्ति का फल ससारके विषयोमे उपेक्षा होना है। अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा ही रहना ज्ञानका फल है। यदि यह नही हुआ तब लोभीकी लक्ष्मीके सदृश वह ज्ञान है। केवल मनोरथसे इष्ट सिद्धि नही होती। मनोरथके अनुरूप सतत् प्रयास करना ही उसकी सिद्धिका मुख्य हेतु है। मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नही जो पुरुषार्थसे सिद्ध न हो सके। पुरुषार्थसे सन्निकट है। केवल जो परमे परिणति हो रही है उससे विरुद्ध परिणति करना ही पुरुषार्थ है। केवल उपयोगको परसे हटाकर अपने रूपमे लगा देना ही अपना कर्त्तव्य है। विशेष फिर।

●

श्री त्रिलोकचन्द्रजी,

दर्शन विशुद्धि।

आकुलता न करना, चाहे सुख हो वा दुःख। आकुलतासे

स्वात्मज्ञानमें ही बाधा पहुँचती है सो नही, सासारिक कार्यमें भी विघ्न आता है। शान्तिसे स्वाध्याय करो। आकुलता मोक्षकी भी न करनी चाहिये। हमारा विचार शिखरजी जानेका है, यदि गया तो पत्र दूगा। अष्टान्हिका वहीकी करनेका विचार कर रहा हूँ। शेष सर्वसे मेरी यथा योग्य।

●

देवी दर्शन विशुद्धि।

महात्माका लक्षण तो श्री बाबाजीमे है। ज्ञानसे आत्मा पूज्य नही, पूज्यताका कारण तो उपेक्षा है। श्रीयुत बाबाजीके प्राय राग-की बहुत मदता है तथा साथमे निर्भयता, निर्लोलुपता, जितेन्द्रियता आदि गुणोके भडार है। यह कोई प्रशसाकी बात नही, आत्माका यह स्वभाव ही है। हम तो पामर जीव है। बाबाजीके समागमसे कुछ सम्मुख हुए है। निरन्तर उनके ससर्गकी इच्छा रहती है; परन्तु पुण्योदय बिना ससर्ग होना कठिन है। हा, अब निरन्तर स्वाध्यायमे काल यापन करता हूँ। इस कालमे ज्ञानार्जन ही आत्मगुणका पोषक है। यदि ज्ञानके सद्भावमे मोहका उपशमन नही हुआ तब उस ज्ञान-की कोई प्रतिष्ठा नही जीवन बिना शरीरके तुल्य है, हम तो उसी-को उत्तम समझते है जो ससारदु खसे भीरू है। यदि बहुत कायक्लेश कर शरीरको कृश किया और मोहादिको कृश न किया, सब व्यर्थ ही प्रयास किया। अतएव अपने समयको ज्ञानार्जनमे लगा कर मोह कृश करनेका ध्येय रखना ही मानवका कर्तव्य है। श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शन विशुद्धि।—जो आपकी प्रवृत्ति है वही ससा-रसे पार करेगी। भूल कर भी गृहसे उदास होनेकी भावनाको न भूलिये, छोडना इस कालमे सुखकर नही। क्योकि पचम कालमे बाह्य निमित्त उत्तम नही। स्वाध्याय ही सर्व कल्याणमे सहायक

होगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर एक बार अवश्य आऊगा। मेरी भावना सत्समागममे निरन्तर रहती है। शेष सर्वसे यथा योग्य।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

संसारमे जहाँ तक गम्भीर दृष्टिसे देखा गया शान्तिका अश भी नही। मै, तूँ, कह कर जन्मका अन्त हो जाता है, परन्तु जिस शान्तिके अर्थ व्रत, अध्ययन, उपवासका परिश्रम उठाया जाता है उस मूल वस्तु पर लक्ष्य नही जाता। कह देना कोई कठिन वस्तु नही। द्रव्यश्रुत मात्र कार्यकारी नही, क्योकि यह तो पराश्रित है। वही चेष्टा हमारे प्राणियोको रहता है। भावश्रुतकी ओर लक्ष्य नही। अत जलमन्थनसे घृतकी इच्छा रखनेवालके सदृश हमारा प्रयास विफल होता है। अत कल्याणपथपर चलनेवाले प्राणियो-को शुद्ध वासना बनाना ही हितकर है।

●

श्री महादेवी

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। तीर्थ यात्रा की, यह अच्छा किया। क्योकि तीर्थक्षेत्रोमे परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है। मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन अवनत होता जा रहा है किन्तु नित्यकर्मंमे कोई बाधा नही। औषधि अर्हन्नाम और स्वाध्याय है। यदि इस पर्यायको कोई सफल करना चाहता है, तब निरन्तर स्वाध्याय और शुभ विचारोमे उपगोगमे लगावे। नाना प्रकारकी कल्पनाओके जालमे न फँसे। दादीजीको दर्शन विशुद्धि। बाईजीका धर्म स्नेह। रुपयोकी बाबत जो लिखा सा ठीक है। आप और बाबाजीको जो इच्छा हो सो

करना। मै आपकी इच्छामे बाधक नही। यहाँपर भी अच्छी व्यवस्था है।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। मै इतना परिश्रम नही कर सकता जो आपकी सभाको लाभ पहुँचा सकूँ। अत: आनेसे लाचार हूँ तथा वहाँका जलवायु मेरे अनुकूल नही। मै बाबाजी महाराजके सदृश जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। आषाढ बदी २ को श्रीपार्श्व प्रभुकी निर्वाण-भूमिके दर्शनको जाना चाहता था और वही चतुर्मासका विचार था किन्तु एकदम पाद-अगुष्टमे वेदना हो गई, जो नही जा सका। पुण्यहीनोको ऐसा अवसर कठिन है। अब आराम है। केवल शामको ज्वराश हो जाता है। मेरी सर्व साधर्मियोसे योग्य दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, बाईजीका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत् है। सप्तम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी माँडते हैं वे दो तरहसे माँडते हैं, उपशम तथा क्षयरूपसे। जो चारित्रकी प्रकृतियाँ उपशम करते है उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते हैं उनके क्षायिक भाव होता है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते हैं, उन्हे क्षायोपशमिक भाव कहते है। क्योकि इन गुणस्थानोमे चारित्र मोहकी क्षयोपशम होता है। ऊपर गुणस्थानोमे उपशम और क्षयकी मुख्यता है। यद्यपि दशम गुणस्थानमे लोभका उदय है इससे इन भावोको क्षयोपशम जन्य क्षायोपशमिक ही कहना

चाहिये। औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमे होता है। क्षायिक भाव द्वादश गुणस्थानमे होता है किन्तु करणानुयोगवालोने उसकी विवक्षा नही की। तत्त्वार्थसारवालोने उसकी विवक्षा की। अत दोनो ही कथन मान्य है। जैसे पचाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थान-वालोमे ज्ञानचेतना होका विधान किया है, पचास्तिकायवालोने तेरहवें गुणस्थानमे ज्ञानचेतना स्वीकार की है। परन्तु विरोध नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि जीवके स्वामित्वपना नही, यह तो पचाध्यायी-वालोका मत है। स्वमी कुन्दकुन्द महाराजने क्षायोपशमिक भावमे कर्म निमित्त होनेसे स्वीकार नही किया। वास्तवमे दोनो ही कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य है। स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमे अनुपम सुखका हेतु है। अत ज्ञानकी वृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करना। शरीरकी रक्षा ज्ञानके व सयमके अर्थ है। यदि इनमे बाधा आगई तब होगा ही क्या, ऐसा विचार, इनके अनुकूल साधन रखना। हमने १२ मास एक स्थानमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है और वह स्थान पार्श्व प्रभुके निर्वाणक्षेत्रके अत्यन्त निकट पार्श्वनाथ स्टेशन, जिसको ईसरी कहते है। जहाँका जल-वायु अति उत्तम है। बाईजीका स्वास्थ्य उत्तम होते ही प्रस्थान करूगा। पर्यायका विश्वास नही। कुछ दिन तो शान्तिसे जावे। यद्यपि यह प्रान्त जहाँ पर श्रीबाबाजीका निवास है, उत्तम है। परन्तु जन-ससर्ग बाधक है। अपरिचित स्थानमे बाह्य कारणोकी न्यूनता रहती है। यद्यपि अध्यवसान भाव-बन्धक है तथापि उनमे निमित्त जो बाह्य वस्तुएँ है वे भी अल्प शक्तिवालोको त्याज्य है, अल्पशक्तिसे तात्पर्य चारित्रमोहका जिनके सद्भाव है। तीर्थंकर महाराज भी बाह्य पदार्थोंको हेय जानकर तथा रागादिकके उत्पादक जानकर त्याग देते है। इसमे अणु मात्र भी सशय नही। कर्मोदयमे भी तो बाह्य वस्तु निमित्त पडती है। अभी समय नही था, इसलिये विशेष नही लिख सका। शेष सर्व मण्डलोसे यथा योग्य।

●

श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजी साहिब

दर्शन विशुद्धि ।

बन्धुता वह है जो ससारसे तारे। सच्चे बन्धु तो अर्हंत ही हैं। विशेष विकल्प न करना। यह अच्छा वह अच्छा, इससे कुछ न होगा। हम अच्छे हैं यदि हम रागादिकको छोड देवे। उन्हे छुडानेवाला कोई नही। हमने उपार्जन किये हम ही छोड देगे, इसमे सदेह नही। सो पूर्ण बल इसीमे लगाना। मेरा सर्वसे यथायोग्य। विशेष पत्र अवसर पाकर लिखूँगा।

●

श्रीयुक्ता धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने। जगतमे अनन्तानन्त जीवराशि है। उसमे मनुष्य-सख्या बहुत अल्प है। किन्तु यह अल्प होकर भी सर्व पर्यायोमे मुख्य है। इसी पर्यायसे जीव निज शक्तिके विकासका लाभ लेकर, अनादि ससारके बन्धनजन्य मार्मिक भेदी दु खोका समूल नाश कर, अनन्त सुखोके आधार परमपदकी प्राप्ति करता है। सयम गुणको पूर्णता इसी पर्यायमे होती है जो कि उक्त परमपदका हेतु है। अतएव जहाँ तक बने उसी गुणकी रक्षाके अविरुद्ध कार्योंको करते अपनी जीवनयात्राका निर्वाह करते हुए निराकुलता पूर्वक इस पर्यायको प्रतिक्षण यापन करना चाहिये। इसीके रक्षण हेतु स्वाध्याय, यजन-पूजन, दानादि क्रियाये है। उक्त गुणके रक्षण बिना, एक अक बिना शून्य मालाकी कुछ गौरवता नही, इसके सहित जीवनका व्यय कुछ व्यय नही। इसके अभावमे कोटि पूर्वकी आयुकी प्राप्ति दृष्टिके बिना वदनकी शोभाके सदृश है। अतएव हे पुत्री! सतत् ज्ञानाभ्यासमे कालयापन करो। इसीमे आपका कल्याण है। शेष यथायोग्य।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। हम श्रीजिनवरके दर्शनके सन्मुख हो गये हैं। आज २ दिन है, जिस दिन दर्शन होगे उस दिनको धन्य समझेगे। आत्मज्ञान शून्य सब प्रकारके व्यापार ऐसे निष्फल है जिस प्रकार नेत्रहीन सुन्दर मुख। यदि हम मानवगण वास्तव तत्त्वपर दृष्टिपात करे तब अनायास ही कल्याण-पथ मिल सकता है। यहाँ तो यह मिसाल है। घडी डूबती है घण्टा पीटा जाता है। ऐसे ही अपराधी आत्मा है कायको दण्ड दिया जाता है। शान्ति स्वकीय आभ्यन्तरमे है। तीर्थोमे डोलने फिरनेसे नही। पर पदार्थोको निज तत्त्व मानकर यह सब जगत आपत्ति-जालमे वेष्टित हो रहा है। अत अब जहाँतक बने इस बाह्य दृष्टिको त्यागना ही श्रेयोमार्गकी ओर जाना है। जो कार्य किया जावे उसमे हर्ष-विषादकी मात्रा न हो। यही मात्रा ससारकी श्रेणी है। अत इस विषयमे सर्वदा सतर्क रहना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। दादीजीसे हमारी दर्शन विशुद्धि कहना। अब तो सच्ची दृष्टिसे ही काम लो और सब जाल है।

●

श्री महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

मै बरुआसागरसे खजराहाकी वन्दना कर पन्ना आ गया। खजराहामे अपूर्व जिन मन्दिर और प्रतिमाये है। परन्तु भग्न बहुत है। इतनी सुन्दर मूर्तिये है जो देखकर वीतरागताकी स्मृति होती है। शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपूर्व है। अस्तु, विशेष क्या लिखे। रागादिकोके सद्भावमे यह सब दृष्टिपथ हो रहा है। सत्य ही है। जो कुछ ससारमे दृश्य पदार्थ है वे सब नश्वर है। किन्तु कल्याण

पथवालेको यह सत्यता प्रतीत होती है। यदि हमको स्वात्मकल्याण करना है तब इन सब उपद्रवोको पृथक् कर केवल जिस उपायसे बने बुद्धिपूर्वक इन रागादिकोको निर्मूल करनेकी चेष्टा करना। स्वकीय कर्तव्यपथमे आना चाहिये। केवल बाह्य त्यागकी कोई प्रतिष्ठा नही। ज्ञानकी भी महिमा रागादिकोके अभावमे है। यो तो सभी ज्ञानी और त्यागी है। किन्तु सत्यमार्गके अनुयायी, हार्दिक स्नेही बहुत ही अल्प है। यही भी एक कषायकी प्रबलता है। क्या करे? कौन नही चाहता कि हम ज्ञानी हो परन्तु महिमा उस मोहकी अपरम्पार है। अस्तु, इन बातोमे क्या सार है? सब यत्न इसी रागादि मलके पृथक् करनेमे लगाना चाहिये। विशेष विकल्पोमे कभी भी आत्माको उलझाना न चाहिये। यावत् प्रयास हो सके शान्तिपूर्वक समय बिताना ही हित मार्गका प्रथम सोपान है। जिस कार्यके सम्पादन करनेमे आभ्यन्तर क्लेश न हो वही रामबाण औषधि ससार रोगकी है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

हम पत्र दे चुके हैं। यह पत्र इस अर्थ देता हूँ। अब बैशाख बदी ९ को पत्र दूँगा। इस मनुष्य पर्यायकी प्राप्ति दुर्लभ जान समयका दुरुपयोग न करना, क्योकि समयके सदुपयोगसे ही समयकी प्राप्ति होती है। आजतक इस जीवने स्व समयकी प्राप्तिके लिये पर समयका आलम्बन लेकर ही प्रयत्न किया। प्रयत्न वह सफलीभूत होता है जो यथार्थ हो। आत्मतत्त्वकी यथार्थता इसीमे है कि जो उसमे नैमित्तिक भाव होते है उन्हे सर्वथा निज न मान ले। जैसे मोहज भाव रागादिक है वे आत्मा हीके अस्तित्वमे होते है परन्तु विकार्य है अत त्याज्य है जैसे जल अग्निका निमित्त प्राप्तकर उष्ण

होता है। और वर्तमानमे उष्ण ही है। अत' उष्णता त्याज्य ही है। क्योकि उसके स्वरूपकी विघातक है, तथा रागादिक परिणाम आत्माके चरित्र गुणका ही विकार-परिणमन है परन्तु आत्माका जो दृष्टा-ज्ञाता स्वरूप है, उसके घातक है, अत त्याज्य है। जिस समय रागादिक होते हैं उस कालमे ज्ञान केवल जानना क्रिया नही करता साथमे इष्टानिष्टकी भी कल्पना जानन-क्रियामे अनुभव करने लगता है। यद्यपि जानन-क्रियामे इष्टानिष्ट कल्पना तद्रूपा नही हो जाती हैं, फिर भी अज्ञानसे वैसा भासने लगता है। जैसे रस्सीमे सर्पका बोध होनेसे रस्सी सर्प नही हो जाती, ज्ञान हीमे सर्प भासता है। परन्तु उस कालमे भयका होना अनिवार्य हो जाता है। जाग्रतकी कथा तो दूर रहो, स्वाप्निक दशामे भी कल्पित पदार्थोंको हम मान-कर रागद्वेषके दशसे नही बच सकते है। कुछ नही। इसी तरह इस मिथ्या भावके सहकारसे जो हमारी दशा होती है वह कैसी भया-नक दु ख करनेवाली है? इसका अनुभव हमे प्रतीक्षण होता है। फिर भी तो चेतते नही। विशेष फिर।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

जहाँतक बने बाबाजीको अन्यत्र जानेसे निषेध करना। वहाँ उनका धर्मध्यान उत्तम होता है तथा साधन भी उत्तम है। जो स्वाध्याय करो, मनन पूर्वक करना। यह एक ऐसा तप है जो स्वात्मोपलब्धिमे विशेष साधक है। इसके द्वारा ही, धर्मध्यान, शुक्लध्यान होते है, यह अपूर्व कारण है। दादीजीसे धर्मप्रेम कहना। मै एकबार बैशाखमे बाबाजीका दर्शन करूँगा।

●

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने । ससारमे जो ज्ञानकी महत्ता है वह मोहके अभावमे है । अतएव उस ज्ञानसे भी जो वास्तविक पदार्थ-को प्रतिपादित करता है । उसको श्रवण कर जो श्रोता मोहके अभाव करनेकी चेष्टा करता है, वह मोक्षमार्गका पात्र हो सकता है । और वक्ताको आशिक भी उस मार्गका लाभ नही हो सकता, यदि मोहके पृथक् करनेका प्रयत्न न करे । ज्ञान समान अन्य इस आत्मा-का हित नही, यदि वह मोहके बिना हो । मोही जीवका ज्ञान बध-हीका कारण है । सर्पको दुग्ध पान करानेसे निर्विषता न होगी । मैं आठ दिन बाद गिरिराज पहुँच जाऊगा । पत्र वही देना ।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

आपके पत्रसे कुछ अशातिकासा आभास हुआ । बेटी ! ससारमे कभी भी शान्ति नही । केवल हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थोंमे स्वकीय रागद्वारा निजत्वकल्पनासे सुख चाहनेकी है । सुख तो स्वकीय शान्ति परिणतिके उदयमे है । हम इन बाह्य वस्तुओके ग्रहणादि व्यापारमे सुख खोज रहे हैं । जो सर्वथा असम्भव है । हमारी अनादि कालसे परिणति मिथ्यादर्शनके सहवाससे कलुषित हो रही है । जो हमे क्षणमात्र भी आत्मसुखका स्पर्श तक नही होने देती । वही महा-पुरुष और पुण्यशाली जीव है जिसने अनेक प्रकारके विरुद्ध कारणो-के समागम होनेपर अपने शुचि चिद्रूपको अशुचितासे रक्षित रखा। आपका ज्ञान विशुद्ध है । अत सब प्रकारके विकल्प त्याग कर स्वकीय श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके उपायमे ही लगा देना । नेत्रोकी कम-जोरीका मूल कारण शारीरिक शक्तिकी न्यूनता है । अत धर्म साध-

नका नोकर्म शरीरको जान सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित है। व्रतादिक करनेका अभिप्राय कषाय कृश करना है। ऐसी कृशता किस कार्यकी, जो स्वाध्यायादि कार्योंमे बाधक हो। उत्सर्ग और अपवादमे मैत्री भाव रखनेमे विज्ञानी जीवोकी मूल चेष्टा रहती है। विशेष क्या लिखे ? हम तो तुम्हे बाईजीके तुल्य समझते है। अपनी मा और भावीजीसे मेरी दर्शन विशुद्धि कहना।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजो,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आपका ध्यान निराकुलता पूर्वक होता है। इस प्राणीको मोहोदयमे शान्ति नही आती, और यह उपाय भी मोहके दूर होनेके नही करता। केवल बाह्य कारणोमे निरन्तर शुभोपयोगके सग्रह करनेमे अपने समयका उपयोग कर अपनेको मोक्षमार्गी मान लेता है। जो पदार्थ हैं, चाहे शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो, उनसे हित और अहितकी कल्पना करना सुसगत नही। कुम्भकार मृत्तिका द्वारा कलश पर्यायकी उत्पत्तिमे निमित्त होता है। एतावता कलशरूप नही हो जाता। यहाँ पर कुम्भकारका जो दृष्टान्त है सो उसमे तो मोह और योग द्वारा आत्माकी परिणति होती है। अत वह निमित्त कर्त्ता भी बन सकता है। परन्तु भगवान् अर्हन्त और सिद्ध तो इस प्रकारके भी निमित्त कर्त्ता नही। वह तो आकाशादिकी तरह उदासीन हेतु है। उचित तो यह है जितना पुरुषार्थ बने रागादिकके पृथक् करनेमे किया जाये। शुभोपयोग सम्यग्ज्ञानीको इष्ट नही। जब शुभोपयोग इष्ट नही तब अशुभोपयोगकी कथा तो दूर रही।

●

श्रीयुक्ता देवीजी,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र देरसे मिला। इससे समय लिखनेको नही मिला। क्योकि

मै पूर्णिमाको ही विशेष ऊहापोह करके लिखता हूँ। मेरी दृष्टिमे तो यही आता है, जो पराधीनताका त्याग ही स्वाधीन सुखका मूल मन्त्र है। पुस्तकसे जो ज्ञान होता है, वह यदि अनुभवमे न आवे तब कार्यकारी नही। सर्व प्रमाणोके ऊपर इसकी बलवत्ता है। श्री कुन्कुन्दाचार्यको यही आज्ञा है जो कुछ भी जानो उसे अनुभवसे प्रमाण करो। यावत् अनुभवमे न आवे तावत् वह पूर्ण नही। सर्वसे दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

विशेष बात यह है जो शान्तिका उपाय प्राय प्रत्येक प्राणी चाहता है, परन्तु मोह वशीभूत होकर विरुद्ध उपाय करता है। अत शान्तिकी शीतल छायाके विरुद्ध रागादिक तापकी उष्णता ही इसे निरन्तर आकुलित बनाए रखती है। इससे बचनेका यही मूल उपाय है जो तात्त्विक शान्तिका कारण अन्यत्र न खोजे। जितने भी पर-पदार्थ है चाहे वह शुद्ध हो चाहे वह अशुद्ध हो जबतक हमारे उपयोगमे उनसे सुख प्राप्तिकी आशा है, हमको कभी भी सुख नही हो सकता। मेरा तो दृढ विश्वास है जैसे बाह्य सुखमे रूपादिक विषय नियम रूप कारण नही वैसे आभ्यन्तर सुखमे शुद्ध पदार्थ भी नियम रूप हेतु नही। जब ऐसी वस्तुकी स्थिति है, तब हमे अपने ही अन्त स्थलमे अपनो शान्तिको देखकर पर पदार्थमे निजत्वका त्याग कर श्रेयोमार्गकी प्राप्तिका पात्र होना चाहिये।

●

श्रीयुक्ता कल्याणमार्गरत महादेवो,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, बाईजीको अन्त करणसे आपके प्रति निरन्तर धर्मा-

नुराग रहता है । बडी चाहसे आपका पत्र सुनती है । उनका स्वास्थ्य १२ माससे ठीक नही । १५ दिन बाद ज्वर आजाता है । परन्तु धर्ममे प्रतिदिन दृढतम परिणाम होते जाते है । निरन्तर समाधिमरणका पाठ चिन्तवन करती रहती है । आपके प्रति उनका कहना है कि बेटी (शक्तितस्त्यागतपसी) इस वाक्यका निरतर उपयोग रखना । ऐसा तप व सयम न करना, जिससे सर्वथा निर्बल शरीर हो जावे, और न ऐसा पोषण ही करना जो स्वाध्याय क्रियामे बाधा पहुँच जावे । यथाशक्ति क्रिया करना श्रेयस्कर है । तत्त्वश्रद्धानके दृढतम करनेके अर्थ आध्यात्मिक दृष्टिपर निरन्तर अधिकार रखना और अपने कालको निरन्तर जैनधर्मके विचारमे लगाना । जो लडकी पढने आये उन्हे सार्थ पाठ पढाना । यदि ऐसी प्रवृत्ति हमारी बन जावेगी तब अनायास हमारा कल्याण निकट है । मेरा भी यही आपके प्रति भाव है कि आपकी आत्मा धर्ममार्गमे तत्पर रहै ।

●

श्रीयुक्ता महादेवी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पूज्यताका कारण वास्तविक गुण-परिणति है । जिसमे वह है पूज्यता व सुखका आवास है । हमारा निरन्तर यही परिणाम रहता है कि बाबाजीके समागममे काल यापन करे, किन्तु कुछ ऐसा कर्म-विपाक है जो मनोनीत नही होने देता । अस्तु, मेरी सम्मतिके अनु-कूल बाबाजीको जितना उत्तम स्थान खातौली है, अन्य नही । इतर स्थानोमे स्वाध्याय प्रेमी नही । प्राय गल्पप्रिय है । यदि उनको पत्र डालो तब मेरा अभिप्राय अवश्य लिख देना और जितना बने सुबोध पूर्वक स्वाध्याय करना । स्वाध्याय तप है और सवर-निर्जरा-का कारण है । आत्मज्ञानके सम्मुख करने वाला है । एकबार प्रबल

आकाक्षा बाबाजीसे मिलनेकी है। ठण्ड जानेके बाद यदि शरीर योग्य रहा तब १५ दिनको आऊँगा।

●

श्रीयुक्ता शान्तिमूर्ति महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

कल्याणपथ तो आत्मामे है, किन्तु हमारी दृष्टि उस ओर न जाकर पराश्रित होकर बाह्य पदार्थोंके गुणदोष-विवेचन हो मे अपनी सर्व शक्तिका अपव्यय कर चरितार्थ हो जाती है। जहाँतक बने, स्वाध्यायका उपयोग यथार्थ वस्तुके परिज्ञानमे ही पर्यवसान न हो जाना चाहिये, किन्तु जिनके द्वारा हम अनन्त ससारके बन्धनमे बद्ध हैं, ऐसे मोह-राग-द्वेषका अभाव करके ही उससे विराम लेना चाहिये। प्रशसासे कुछ स्वात्मोत्कर्ष नही। स्वात्मोत्कर्षका मुख्य कारण रागद्वेषकी उपक्षणोता ही है। मुझे एकबार बाबाजीके दर्शनकी बडी इच्छा है। समय पाकर होगा। मेरा स्वास्थ्य भी अब रेलकी यातायात योग्य नही। केवल एक स्थान पर शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करनेके योग्य है। आजकल प्राणियोकी स्थिर प्रकृति नही, इसीसे विशेष आपत्ति नही सह सकते। फिर भी जिसके आभ्यन्तर उत्तम श्रद्धान है वह इन विपत्तियोके द्वारा भी विचलित नही होता। शेष सर्वसे धर्म-प्रेम।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र मिला, समाचार जाने। भाद्र मास सानन्दसे धर्मध्यानमें बीता। किन्तु आभ्यन्तर शुद्धिका होना कठिन है। जिन जीवोने आत्मशुद्धि न की उनका व्रत, तप, सयम, सकल निष्फल है। बाह्य क्रिया तो पुद्गल कृत विकार है। अत बाह्य आचरणो पर उतना

ही प्रेम रखना चाहिये जो आत्मशुद्धिके साधन हो। क्योंकि मति-ज्ञानके साधन द्रव्येन्द्रियादिक है। अत इनकी रक्षा करनी इष्ट है। जहाँतक बने, आभ्यन्तर परिणामोकी निर्मलता रखना ही अपना ध्येय समझना। आत्माका निज स्वरूप भी चेतनारूप है। उसकी व्यक्ति ज्ञान-दर्शन रूपमे प्रगट अनुभवमे आती है। परन्तु अनादि परद्रव्य सयोगसे नाना परिणमन द्वारा विकृतावस्था उसकी हो रही है। परन्तु इससे ऐसा न समझना कि स्वरूप प्रगट होना असम्भव है। असम्भव तो तब होता जब उसका लोप हो जाता, सो तो नही है। असली स्वभावका प्रगट होना कठिन है। विस्मृत हस्तगत रत्न-के समान है। जिस तरह कोई अपनी वस्तु भूल जाता है और यत्र तत्र खोजता है। बस, इस न्यायसे यह जीवात्मा अपने असली निज रूपको भूल कर पर-पदार्थोमे हेरता है। अपनेको आप नही जानता। मोहनिमित्त प्रबल हो रहा है। उसमे फँसकर सुखके कारणोको दु ख प्रतीत करता है, दु खके कारणोमे सुख मान रहा है। इस विपरीत भावसे निज निधि भूल रहा है।

●

श्रीयुत महानुभाव बाबा भागीरथजी वर्णी,

योग्य इच्छाकार।

मै आपको उत्कृष्ट और महान् समझता हूँ। अत आपके द्वारा मुझे खेद पहुँचा, यह मै स्वीकार नही करता, आपकी महती अनुकम्पा होगी जो आप कार्तिक बाद दर्शन देवेगे। मै अगहनमे श्री गिरि-राजकी बन्दनाको पैदल जाऊँगा, ऐसा दृढ निश्चय है।

●

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप लोग धार्मिक है। मेरी सबसे दर्शन विशुद्धि। शान्तिका

मार्ग आकुलताके अभावमे हैं। वह निजमे है, निजो है, निजाधीन है। हम ऐसे पराधीन हो गये है जो उसको लौकिक पदार्थोंमे देखते हैं तथा निरन्तर उनकी उपासनामे आयु पूर्ण कर देते हैं, उचित तो यह था कि स्वात्मसम्बन्धी जो कलुषित भाव थे उन्हे दूर कर शान्त होते, परन्तु सो तो दूर रहा। (आखमे रोग कानमे दवा) अस्तु, विशेष फिर, अब तो यही भावना रहती है कि कुछ पारमार्थिक शान्तिकी ओर लगूँ। एक समयसार ही का स्वाध्याय करता हूँ। चाहे कुछ आवे, चाहे न आवे, वही शरण है। अब किस-किसकी शरण लूँ। अगर पार होना है तो वही कर देगा।

●

श्रीयुक्ता महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। इस ससार-महाटवीमे मोहकर्म द्वारा सम्पादित चतुर्गति भ्रमण द्वारा यह जीव कभी भी स्वास्थ्य-लाभका भागी न हुआ। सुखका मूल कारण केवल मोहकर्मका नाश है, वह सामान्यत मोह, राग, द्वेष तीन रूपमे विभाजित है, जिसमे प्रथम भेदके आधीन इतर दोकी सत्ता है। जिसको कुछ भी ज्ञान है वह शीघ्र ही इसको कह देता है, परन्तु आभ्यन्तरसे उसकी विकृतिको न होने दे, यही परम दुर्लभ है। अतएव जहाँतक बने स्वाध्यायमे ही अपनी प्रवृत्ति रखना, यथाशक्ति तप और त्याग करना तथा समय पाकर अपनी पुत्री, बहन, माताओको धर्मध्यानमे लगाना। यही सर्व उपाय मोहके दूर करनेके है।

जगत्की विचित्रता ही हमको जगतसे उपरत करानेकी जननी है। हम जन्मान्तरोके प्रबल विरुद्ध अभिप्रायोसे विपरीत अभि-निवेशोसे नाना प्रकारके कर्मबन्धनसे जकडे हुए है। हमे निज हित नही सूझता। जिसने इस पराधीनताका कारण मोह-बधन ढीला कर

दिया, उसने सब कुछ किया। इससे ससारमे यदि न रुलना हो तो इसे छोड दो। यही मोक्षमार्ग है। अब बाईजी अच्छी हैं। पुत्री! तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना। क्योकि शरीर निरोगता ही धर्म साधनमे मुख्य हेतु है। बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नही आया है, शायद भाद्रपद मासमे पत्र देना छोड दिया हो।

●

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। हमलोगोका कर्त्तव्य ही है कि उनकी वैयावृत्य करे। उनको दमाकी बीमारी होगई है। यदि योग्य औषधि मिल जावे तब उनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे। इतनी बीमारी होते ही उनका धैर्य प्रशसनीय है। 'हा' शब्दका उच्चारण नही। धर्ममे पूर्ण दृढता है, एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया है, किन्तु मुझे विश्वास है, उसके रोगका प्रतिकार नही, फिर जो होगा समाचार दूँगा। रोगादि दु खजनक नही, रागादिक दु खदायी है। बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोडकर अन्यत्र न जावे। मैने यह विचार कर लिया है कि जवाबी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना, यह नियम बाबाजीके वास्ते नही। स्वाध्याय दृढाध्यवसायसे करना।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

श्री जिनेन्द्रके आगमका अहर्निश अभ्यास करना। यही ससार-महार्णवसे पार करनेको नौका सदृश है। कषाय-अटवी दग्ध करनेको

दावानल है। स्वानुभव-समुद्रकी वृद्धिके अर्थ पौर्णमासीका चन्द्र है, भव्य-कमल विकासनेको भानु है, पाप-उलूक छिपानेको भी वही है। जहाँतक बने, यथायोग्य शरीरकी रक्षा करते हुए धर्मकी रक्षा करना। बाईजीका धर्मस्नेह। बाबाजी महाराजका पता देना, वे जहाँ पर चातुर्मास करेंगे, वही मै रहूँगा।

●

श्री देवीको,

दर्शन विशुद्धि।

बाह्यनिमित्त कोई भी ऐसे प्रबल नही, जो बलात्कार परिणामको अन्यथा कर देवे। अभी अन्तरगमे कषायकी उपशमता नही हुई। इसीसे यह सर्व विपदा है। आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नही। अपना स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है। यही निरन्तर भावना और तद्रूप रहनेकी चेष्टा रखना। यदि कर्मोदय प्रबल आया तब शान्ति भावसे सहना, यही कर्मको नाश करनेका प्रबल शस्त्र है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

श्रीयुत महाराजसे प्रणाम कहना, जगतका मूल स्नेह है। परन्तु धार्मिक पुरुषोका स्नेह जगतके उच्छेदका कारण है। यदि राग बुरा है तो रागमे राग न करो। रागका उदय दशम गुणस्थान पर्यन्त होता है। अर्हत् भक्ति भी ससार-उच्छितिका हेतु इसीसे मानी गई है। क्योंकि गुणोमे अनुराग ही भक्ति है, मेरा तो यह विचार है, परकी भक्ति औपचारिक है, परमार्थसे आत्माका शुद्ध रूप ही ससारका घातक है। देवीजी, मेरा बाबाजीसे आबालकालसे स्नेह है, और यदि इनसे स्नेह छूट गया, तब दैगम्बर-पद होना दुर्लभ

नही, परन्तु यह होना अशक्य है। आप जो स्वाध्याय करें, अध्यात्म मुख्यताके हेतु ही करें। यदि अवकाश पुण्योदयसे मिला, तब बाबाजीका एकबार दर्शन अवश्य करूँगा। शेष सर्वसे दर्शन विशुद्धि।

●

श्रीयुक्ता महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

बाबाजी महाराज हो तब हमारी धर्मस्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और वहाँ न होवे तो उनका पता देना। बूढी दादीसे हमारी धर्म स्नेह पूर्वक दर्शन विशुद्धि। और आप पढानेमे काल लगाना। तथा थोडा अभ्यास यानी कण्ठ करनेमे समय लगाना। शेष स्वाध्यायमे समय लगाना। यह मनुष्य आयु महान पुण्यका फल है। सयमका साधन इसी पर्यायमे होता है। सयम निवृत्तिरूप है। निवृत्तिका मुख्य साधन यही शरीर है।

●

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। निरन्तर जैनधर्मके ग्रन्थोका स्वाध्याय करनेसे चित्तमे अपूर्व शान्ति होती है। शरीरकी रक्षा धर्मसाधनके अर्थ पापप्रद नही। विषयसे निवृत्ति होने पर तत्त्वज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमे ससार-लतिकाका छेदन कर देती है। केवल देह-शोषण मोक्षमार्ग नही। अन्तरग वासनाकी विशुद्धिसे ही कर्म निर्जीर्ण होते है। किसी पदार्थमे भीतरसे आसक्त नही होना चाहिये। अपनी भावना ही आपकी आत्माका सुधार करनेवाली है। जहाँतक बने, यही कार्य करनेमे समय बिताना। बाईजीका सस्नेह जैजिनेन्द्र। ऐसा उपाय करना जिससे यह पराधीन

पर्याय न पाना पडे। वैसे तो सर्वपर्याय पराधीन है। पारलौकिक दृष्ट्या यह महती परतन्त्रताकी जननी है। शेष कुशल है।

●

श्रीयुक्ता महादेवी सरल परिणामिनीको,

दर्शन विशुद्धि।

इस पर्यायसे जहाँतक बने, सयम और स्वाध्यायकी पूर्ण रक्षा करना। ससार सततिका नाश इसी पद्धतिसे होता है। बाईजीका आशीर्वाद। बेटी महादेवी! तुम सन्तोषपूर्वक स्वाध्याय करो और अपनी विस्मृत निधिको प्राप्त करो। सन्तोष ही परम सुख है।

●

श्रीयुक्त महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आपके समाचार ब्रह्मचारी छोटेलालजीसे मिल जाते है। आप स्वसमयको स्वाध्यायमे ही लगाते हैं और मनुष्यजन्मका यही कर्तव्य है। परोपकारकी अपेक्षा स्वोपकारमे विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है। बल्कि यो कहिये परोपकार मिथ्या-दृष्टिसेही होता है। सम्यग्दृष्टिसे परोपकार हो जावे यह बात अन्य है परन्तु उसके आशयमे उपादेयता नही। क्योकि यावत् औदयिक-भाव है उनका सम्यक्दृष्टि अभिप्रायसे कर्त्ता नही, क्योंकि वे भाव अनात्मज है। इसका यह तात्पर्य है कि वह भाव अनात्मज मोहा-दिकर्म उनके निमित्तसे होते है। अतएव अस्थायी है। उन्हे सम्यक्-ज्ञानी, क्या उपादेय समझता है? नही समझता है। इसके लिखनेका तात्पर्य यह है। जैसे सम्यग्दृष्टिके यदि श्रद्धा है जो न मै परका उप-कारी हूँ न पर मेरा है, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्धसे उपकार होजाना कुछ अन्तरग श्रद्धानका बाधक नही। इसी प्रकार अनुपकारादि भी

जानना। सत्पथके अनुकूल श्रद्धा ही मोक्षमार्गकी आदि जननी है।

●

श्रीयुक्ता धर्मपिपासु महादेवीको बाईजीका,

आशीर्वाद।

आपसे हमारी बारबार यही एक सम्मति है कि अर्थप्रकाशिकाका स्वाध्याय करो और यही भैय्याकी सम्मति है। हमारा भी यथासमय वहाँ आना होगा। चातुर्मासका निश्चय नही। मेरी दादी व श्री दीपचन्द्रकी माँ तथा चिरजीवनी दोनो शकुन्तलासे आशीर्वाद। पढनेको कह देना। श्री दीपचन्द्रकी छोटी माँको भी पढाना। अपने लोगोकी पर्याय पराधीन है। परन्तु इसका खेद न करना। ससारमे सर्व पराधीन है। अतएव इसके नाशका उद्यम जिसने कर लिया, वही स्वाधीन और सुखी है। यह जीव जैसे पराधीन है वैसे ही स्वाधीन भी हो सकता है। यह सर्व अपनी कर्त्तव्यताका फल है जो आत्मा कर्मार्जनकी प्रचुरतासे नरकादि निवासोका अधिपति होता है वही उनका निरासकर शिवनगरीका भूपति भी हो सकता है, इससे कभी भी अपनी आतमाको तुच्छ न समझना।

●

श्रीयुक्ता महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। मेरे कोई शल्य नही है। आप कोई चिन्ता न करना, अपना धर्मध्यान साधो, इसीमे कल्याण है। बाईजी का आशीर्वाद-बेटी, सानन्द धर्म साधो।

●

श्रीयुक्ता देवीको,

दर्शन विशुद्धि।

तात्त्विकबुद्धिसे सर्व कार्य करना। जो भी औदयिक भाव होते

है, वह यदि सम्यग्ज्ञानपूर्वक उनके स्वरूप पर दृष्टि देकर आचरण किये जावें तब क्षायिकभावके तुल्य कार्यकारी हो जाते है। सर्व तरफसे चित्तवृत्तिको पृथक् करना समुचित है।

●

श्रीयुक्ता महादेवी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, जहाँतक बने, परपदार्थसे ममत्व बुद्धि हटाना, यही सार है। यद्यपि धार्मिक पुरुषोका स्नेह धर्म-साधक है तथापि अन्तमे हेय ही है। अणुमात्र राग भी बाधक है। बहुत रागकी क्या कथा? स्वाध्ययाय ही परम तप है।

●

श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजी साहिब,

दर्शन विशुद्धि।

मै आपको यह कहना उचित समझता हूँ आप कल्याणपथके अर्थ कदापि व्यग्र न होना, क्योकि वह तो निजवस्तु है। यदि पराई होती तब प्रार्थना और व्यग्रताकी आवश्यकता है। देखो, शुभो-पयोगमे श्रीअर्हद्भक्ति और अशुभोपयोगमे अङ्गनादि प्रेम कारण पडते है परन्तु शुद्धोपयोगमे किसीकी आवश्यकता नही। मै अगहन सुदि ११ को श्री १००८ गिरिराजकी यात्राके अर्थ प्रयाण करूँगा। तबतक वही रहूँगा। मेरी सर्वसे धर्मप्रेम कहना।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, महाराजसे मेरा प्रणाम कहना और वे यदि अन्यत्र

गमन कर गये हो तब वहाँ पर पत्र द्वारा लिख देना। मै श्री नैनागिर, द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रोकी वन्दना करता हुआ श्री अतिशय क्षेत्र पपौराकी बन्दनाको आया हूँ। यहाँ पर अगहन बदी २ तक रहूँगा, फिर श्री अतिशय क्षेत्र अहारकी वन्दना कर अगहन बदि १० तक बरुआसागर पहुँचूँगा। अभी स्वास्थ्य अच्छा है। किन्तु जिन परिणामोसे स्वात्महित होता है उनका स्पर्श भी अभी तक अन्तस्तलमे नही हुआ है। हम लोग केवल निमित्तकारणोकी मुख्यतासे वास्तविक धर्मसे दूर जा रहे है। जहाँ पर मन, वचन, कायके व्यापारकी गति नही वह पदप्राप्ति आत्मबोधके बिना हो जावे, बुद्धिमे नही आता। यह क्रिया जो उभयद्रव्यके सयोगसे उत्पन्न हुई है, कदापि स्वकीय कल्याणमे सहायक नही हो सकती। अतएव औदयिकभाव तो बधका कारण है ही। किन्तु क्षयोपशम और उपशमभाव भी कथचित परद्रव्यके निमित्तसे माने गये हैं। अत जहाँतक परपदार्थकी सपर्कता आत्मके साथ रहेगी वहाँतक साक्षात् मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभा ही नही किन्तु असम्भवा है। अत अन्तरगसे अपने ही अन्तरगमे अपने ही द्वारा अपनेही अर्थ अपनेको गभीरदृष्टिसे परामर्श करना चाहिये, क्योकि मोक्षमार्ग एकही है, नाना नही।

> एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्यात्मक-
> स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिश ध्यायेच्च त चेतसि।
> तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्,
> सोऽवश्य समयस्य सारमचिरान्नित्योदय विन्दति॥

मोक्षमार्ग तो दर्शनज्ञानचारित्रात्मक ही है, उसीमे स्थिति करो और निरतर उसका ध्यान करो, उसीका निरतर चितवन करो, उसीमे निरतर विहार करो, तथा द्रव्यान्तरको स्पर्श न करो, ऐसा जो करता है वही मोक्षमार्ग पाता है। इसका यह अर्थ नही कि स्वच्छन्द होकर आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट हो जावो। किन्तु अन्तरग तत्त्व-

की यथार्थ प्रतीति करना ही हमारा कर्त्तव्य है। व्यवहारक्रियामें मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

●

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशद्धि

भाई ! जहाँ तक बने, प्रसन्न रहना और मोक्षमार्गकी सिद्धिके अर्थ व्यग्र न होना, क्योकि शातिके बिना सुख नही और सुख बिना मोक्ष नही, अत जो कुछ बने, शातिसे बिताओ। मै फाल्गुन तक अभीष्ट स्थान श्री गिरिराज पहुँचूँगा। यदि आप लोगोका समागम रहा तब अच्छा है। वहाँसे दो दिन बाद आऊगा।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, बाबाजी महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है और वह यहाँसे बनारस जावेगे। ससारमे प्राणीमात्र मोह-के वशीभूत होकर चिन्तातुर रहते है और मोहमे ऐसा होना स्वाभाविक है परन्तु महापुरुष वही है जो इस मोहको कृश करनेमे सतर्क रहे। इस मोहने नारायणलक्ष्मणको 'हा राम' भी पूर्ण न कहने दिया। और प्राणपखेरू उडाकर ही सतोष न किया, किन्तु आगामी भी जबतक इसका सत्त्व है पिण्ड न छोडेगा। अत जीवन-मरण, लाभ-अलाभ-मे समता रखना ज्ञानीका कार्य है।

"सर्व सदैव भवति नियत स्वकीय"
कर्म्मोदयान्मरणजीवितदु खसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु पर परस्य
कुर्य्यात्पुमान्मरणजीवितदु खसौख्यम् ॥

अन्यथा कोई भी मनुष्य ससारमे ऐसा नही है जो उदयागत कर्मकी वेदनाको पृथक् कर सके। असाताके उदयमे श्रीआदिदेवकी सहायता करनेमे भरतादिसे महाप्रभु समर्थन न हो सके और जब सातोदय आया तब श्री श्रेयासको स्वयमेव दान देनेकी प्रतिक्रियाका स्वप्नमे प्रतिबोध हुआ। अत यदि बच्चेकी आयु है तब आप चिन्ता करें या न करें, अनायास बालकको आराम हो जायगा। विशुद्ध परिणाम ही निरोगतामे सहायक होता है। सक्लेश परिणाम तो बाधक कारण ही है फिर इस ससारमे और क्या रखा है? कदलीस्तभके समान असार है। अत सर्व विकल्प छोड, स्वात्मकी ओर आनेकी चेष्टा करना ही श्रेयोमार्गकी भूमिकामे पदारोपण करना है। आप अब अपनी मातारामा और भाई लक्ष्मणजी और उनकी धर्मपत्नी आदिसे मेरी धर्मवृद्धि कहना और कहना कि बुद्धिका फल आत्महितमे लगना ही है। यो तो ससारमे अनेक जन्म-मरण किये और करने पडेगे। यदि आत्महितमे एकवार भी प्रयत्न कर लिया तब फिर इन अनन्त यातनाओसे अपनेको रक्षित कर सकोगे। अत उपाय करते जाओ परन्तु चिन्ता न करो, जो भविष्य है वह अनिवार्य है। हाँ, जिन महापुरुषोने इस मोहमल्लको विजय कर लिया उनका भविष्य प्राजल है। शेष कुशल है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

बेटी, ससार-बन्धन बहुत ही विकट समस्या है। इसमे सुलझना अल्प पुण्यसे नही होता। यह जीव यदि अन्त करणको स्थिर कर विचार करे और रागादि विभाव परिणामोकी परम्परा पर एकबार परामर्श कर उनके पृथक् होनेपर यत्नशील हो तब ऐसी कोई अलौकिक शक्तिका उदय होगा जिससे आगामी उनकी सतति इतनी उप-

क्षीण रूपसे चलेगी जो अल्पकालमे उसका सर्वस्व ही नही रहेगा। मोक्षमार्गमे वास्तविक मूल कारण सवर है। इसके बिना निर्जरा-की कोई प्रतिष्ठा नही। अत सिद्धान्तवेत्ताओको उचित है जो स्वात्म-तत्त्वकी इस सवर तत्त्वसे रक्षा करे। लौकिक प्रयत्न बंधनहीमें सहायक होते है और यदि यही जीव सम्यक् अभिप्रायसे आशिक भी रागादिकोमे हानि करनेका प्रयत्न करे, तब मोक्षमार्गके पथपर आरूढ हो सकता है। आत्माकी कथनीसे आत्माकी प्राप्ति नही हो सकती। किन्तु उसके अनुकूल प्रवर्तनसे उसका लाभ हो सकता है। इसका अर्थ यह है जो आत्म ज्ञाता-दृष्टा है उसमे जो रागाकिकी कलु-षता है वही उसके स्वरूपकी नाशक है। उसे न होने दे, यही हमारा पुरुषार्थ है, शेष तो विडम्बना है। जब तक यह न होगा तब तक शुभाशुभ क्रियाओसे इसी दु खमय ससारकी वृद्धि होगी और निर-न्तर पराधीनताके बधनमे पर्यायकी पूर्णता करनी होगी। आप अपने सरल परिणामोका फल प्राप्त करनेमे व्यग्र न होगी। एक समय वह आवेगा जो अनायास ही वह होगा मेरी तो सम्मति है, जो व्यग्रता-मे सिवाय आकुलताके और कुछ नही होता। मोक्षमार्ग तो शान्ति-मे है। रागादिककी कलुषता कितनी दु खदायी है ? अन्य दु ख ही नही, आत्मकल्याणकी प्राप्ति तो आपमे है, पर तो निमित्त मात्र है, अत अपने ही बाधक, साधक कारणोको देखो, जो बाधक हो उन्हे हटाओ, साधक कारणोको सग्रह करो।

●

श्रीयुत महराज मेरे परम उपकारी महाशय,

इच्छाकार।

आपने लिखा सो अक्षरश सत्य है, आत्माका स्वभाव ज्ञाता तथा दृष्टा ही है, तथा तत्त्वदृष्टिसे दो भाव नही किन्तु एकही भाव है। किन्तु पदार्थके द्विविधपनसे ये आत्माके ज्ञातृत्व और दृष्टत्व व्यवहार

होता है। इसकी विकृतावस्थामे औदयिक रागादिकोकी उत्पत्ति होती है अथवा यो कहिये, औदयिक रागादिक भावोकी सहचारिता ही इसकी विकृतावस्था है। दीपकका दृष्टान्त जो दिया गया है वह यथार्थमे उसमे जो ज्ञेयकी सरलता है और प्रकाशक भाव है वही वास्तविक दीपक है। अन्य जो विक्रिया है पवनादि निमित्तक हैं। यह बात लिखनेमे अति सरल है, परन्तु जबतक प्रवृत्तिमे न आवे तबतक हम सरीखे अनुभवशून्य ज्ञानियोका यह ज्ञान अन्धेकी लालटेनके सदृश है। आपकी बात नही। क्योकि आप एक विशेष अतरङ्गसे विरक्त पुरुष हैं। अन्तरङ्गकी निर्बलता बिना बाह्य व्यापार सुखकर नही, सुख तो अन्तरङ्गमे रागादिक दोषके अभावमे है। उसके जाननेका उपाय यथार्थमे तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिका मूल उपाय आगमाभ्यास और निरीह चित्तवृत्ति है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, ससारमे क्षोभ होता है, हो, इसको औदयिकभाव जानो। इसमे विकल न होना। विकलताकी उत्पत्ति यदि हुई तब सम्यग्ज्ञानी और अनात्मज्ञानीमे क्या अन्तर हुआ? आप अपनेको कदापि व्यग्र न होने दे, यह बाह्यसयोग जिन भावोंसे होता है, वह परनिमित्तक होनेसे अनात्मीय है, तब यो जो परवस्तु है, उसके अनात्मीय होनेमे कौन सी शका है। अत आपत्ति और अनुपपत्ति अनात्मिक जान कदापि व्यग्र न होना। अज्ञ मनुष्योके सम्बोधनार्थं नारकादिक दु खोका निरूपण कर आचार्य महाराजने उन्हे पापसे रक्षित होनेकी चेष्टा की है। तथा स्वर्गसुखका लोभ दिखाकर उन्हे शुभोपयोगमे लगाया है। सम्यग्ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनोको अनात्मीय जानता है। अत उसको मोहके सद्भाव-

मे भी केवल पूर्ण स्वरूपप्राप्तिके अर्थ ही अभिप्राय रहता है, अत वह ससारके सभी कार्योंमे मध्यस्थ रहता है। माध्यस्थता ही मोक्षमार्गकी प्रथम यात्रा है। इसीके बलसे सम्यग्ज्ञानी नाना प्रकारके आरम्भादि अन्य बाह्य अपराध होने पर भी नियतकी निर्मलतासे अनत ससारके दण्डसे रक्षित रहता है। अपनी आत्माको कदापि तुच्छ न मानना। जब आशिक निर्मल ज्ञान हो गया तब कदापि ससारकी यातनाका पात्र यह आत्मा नही हो सकता। अत अपने निर्मल परिणामोके अनुकूल बाह्य परिस्थिति पर स्वामित्वकी कल्पनाका त्याग करना ही ज्ञानीका काम है। चारित्रमोहकी उद्वेगता आत्मगुणकी घातक नही, घातका अर्थ यहाँ विपर्ययता है, न्यूनाधिक नही। न्यून होना अन्य बात है, बिपर्ययता अन्य वस्तु है। दर्शनमोहके अभावमे आत्मा निरोग हो जाता है, जैसे रोगी मनुष्य लघन शुद्ध होनेके बाद निरोग तो हो जाता है, परन्तु अशक्त रहता है। क्रमसे पथ्यादि सेवन कर जैसे अपनी पूर्ण बलिष्ठताका पात्र हो जाता है, तद्वत् सम्यग्दृष्टि निरोग होकर क्रमसे श्रद्धाका विषय लाभ करते हुए एक दिन अपने अनन्त सुखादिकका भोक्ता हो जाता है। इसमे अणुमात्र सन्देह नही। अत जब आपने वास्तविक आत्मदृष्टिका लाभ प्राप्त कर लिया, तब इन क्षुद्र उपद्रवोसे भयकी आवश्यकता नही।

●

भैया त्रिलोकचन्द्रजी,

आप जब अन्तरगसे धर्मके प्रेमी हो तब इन क्षुद्र भावोके द्वारा नही त्रासित हो सकते। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका निषेध नही, परन्तु सोचो तो सही, वस्तु तो वस्तु ही है। क्या उसके उत्कर्षका जनक अन्य हो सकता है ? कदापि नही। यथा—

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदं ति जपदे लोगो।
तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण" ॥

जोधा तो युद्ध करते है, व्यवहार ऐसा ही होता है राजाने युद्ध किया, ऐसा ही व्यवहारसे कथन होता है, कि जीवके द्वारा ज्ञानावरणादि किये गये। इसी तरह मोक्षमार्गका उदय तो भव्य जीवके काल पाकर होता है, और लोकमे ऐसी परिपाटी है जो अमुकके उपदेशसे अमुकको मोक्षमार्गका लाभ हुआ। इस विषयमे समय पाकर लिखेंगे। आजकल कुछ बाह्य शरीरकी व्यवस्था अवस्थाके अनुकूल हो रही है, उचित ही है। अब चित्तमे व्यग्रताके कार्यसे उदासीनता रहती है।

●

श्रीयुक्ता महादेवीजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

सानन्द धर्मका साधन होता होगा। जितने अश रागादिक न्यून हो वही धर्म है। बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिककी कृशतामे हेतु है। जितना बाह्य परिग्रह घटै उतनी ही आत्मामे मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुभावक है, अत जहाँतक बने, यही पुरुषार्थ कीजिये। सर्वसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिये। क्योकि तत्त्व निवृत्तिरूप है। "यथा निवृत्तिरूप यतस्तत्त्वम्।" स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरग तपमे गिना है। और श्री कुदकुदस्वामीने आगमज्ञान ही त्यागियोके लिये मुख्य बताया है। और आगमज्ञानका फल मुख्य भेदज्ञान है।

●

श्रीयुक्ता महादेवी,

दर्शन विशुद्धि।

बेटी! जहाँतक बने, स्वाध्यायमे काल बिताओ। कोई किसीका

हितकर्ता नही । आत्मपरिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है। वह बस्तु किसीके द्वारा नही मिलती। उसका कारण आप ही हैं।

●

श्रीमती महादेवीजी

दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने। तुम्हारी निर्मलता ही ससारसे पार कर देवेगी। बाईजीका सस्नेह जै जिनेन्द्र ।

●

श्रीयुक्त महाशय त्रिलोकचन्द्रजो,

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने। पत्रसे प्रतीति आती है कि अब आपको दृष्टि स्वस्वरूपकी ओर सलग्न है, यही तो कर्तव्य है। अनादि कालसे यह बात यदि एकबार भी हो जाती तो यह जीव इन अनत यातनाओका पात्र न होता, निरन्तर ससारी जीव विद्यमान पर्यायमे आत्मीय कल्पना कर स्वकीय स्वरूपसे वचित हो रहा है। यद्यपि यह पर्याय विजातीय उभयद्रव्यके सम्बन्धसे बनी हुई है। उन दोनोके कार्योमे केवल स्वात्मकल्पना करना ही मिथ्याभाव है। उस पर्यायमे जितना स्वकीय अश है, उतना अपना माने तब कल्याण होनेमे विलम्ब न हो, परन्तु मोहोदयमे यह होता नहीं। जैसे रागादिक भाव आत्मा और मोहके मेलसे होते है, उनको सर्वथा निजके मानना ही मिथ्या है। हा, निजके हैं, परन्तु उनके होनेमे पुद्गलकर्मोदय निमित्त हैं। अत निमित्तकी अपेक्षा पुद्गलके और उपादान दृष्टिसे यदि अपने मानें तब उन विभावोको दु खजनक मान उनके पृथक् करनेमे प्रयास करे और अनायास सुखका पात्र हो

जावे। हमारी आत्मामें वर्तमान पर्यायमे रागादिक न हो, ऐसी भावना मेरी अल्पमतिमे तो मिथ्या ही जान पडती है। रागादिकोका दशम गुणस्थान तक तरतम रूपमे होना अनिवार्य है। रागादिक हो, इसकी चिन्ता न करे। इस बातकी चिन्ता आवश्यक है, कि यह जो भाव हैं, सो विभाव है, क्षणिक है, व्यभिचारि है। इनको परकृत जान, इनमे हर्ष-विषाद न करे। यही चिन्ता मोक्षमार्गकी प्रथम सोपान है। इसके बिना मोक्षमार्गका पथिक नही हो सकता। सम्यग्ज्ञानी जीवके जो निन्दा-गर्हा होती है, यह मोहका कार्य है। वह इनको भी निज स्वरूप नही जानता। देशव्रत-महाव्रत भी होते है, इनको कषायोदयका कार्य समझता है। इसमे भी उपादेय बुद्धि नही। जिस कार्यके करनेसे आत्माको बध हो, सम्यग्दृष्टि कदापि उसमे उपादेय बुद्धि नही करता। अत पर्यायके अनुरूप जो परिणाम हो उनको कौन रोक सकता है? किन्तु हमारी आभ्यन्तर दृष्टि यथार्थ होना ही उन भावोके फन्देको छोडनेमे तीक्ष्ण असिधाराका काम करती है। हम और आपको तो ऐसे अनिष्ट समागम ही नही जो व्याकुल कर सके। सप्तम नरकके नारकीकी दशापर विचार करिये। जहाँ तीव्रतम अनिष्टोके कारण होनेपर भी जीव निजस्वरूपका परिचय करनेमे समर्थ हो जाता है। यही कारण है जो हर गतिमे सम्यक् होता है। अत बाह्य निमित्तोको गौण कर अपने पुरुषार्थका सभालना ही अपना भला होनेमे कारण है। आप जहाँतक बने, इस समय इसी ओर लक्ष्य रखिये। जो भील द्रोणाचार्यके पुतलेसे धनुर्विद्यामे अर्जुन-के सदृश निष्णात हो गया। परमात्माका स्मरणसे भी परमात्मा होता है जैसे दीपकसे दीपक। किन्तु जैसे अरणिनिर्मथनसे अग्नि होती है, ऐसे अपनी उपासनासे भी परमात्मा हो जाता है। अत इस बातका दु ख करनेकी कोई आवश्यकता नही, जो इस कालमे केवली और श्रुतकेवली नही। क्या करे? श्रुतकेवली और केवलीके निकट क्षायिक सम्यक्दर्शन होता है। परन्तु स्वय श्रुतकेवली हो उसे क्षायिक

सम्यक् हो तब इतर निमित्तकी क्या आवश्यकता है। विशेष क्या लिखूँ ? इन निमित्त कारणोकी प्रपञ्चताको त्यागकर अपने पुरुषार्थ-को सम्भालिये। तृणकी ओर पहाड़ है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

●

श्रीयुत् महाशय मगलसैनजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप सानन्द पहुँच गये होगे। आपके जानेके बाद यहाँ बाबू सखीचन्द्रजी आए थे। उन्होने निमियाघाटमे २५ बीघे जमीन ली है। एक उत्तम धर्मशाला बनवायेंगे। अग्रवाल है। बहुत उत्तम आदमी है। हम तो कार्तिक बाद जावेगें। आप स्वाध्याय करो, व्यर्थकी कल्पनामे कुछ लाभ नही। जो आपकी आजीविका है उसे सहसा न मिटा देना। कल्याणका मार्ग आत्मामे है। केवल पराव-लम्बी होकर कल्याण चाहनेसे कल्याण नही होता। आपकी इच्छा सो करना।

●

लाला मगलसैन जी,

दर्शन विशुद्धि।

स्वाध्याय करो, वही कल्याणका मार्ग है। व्यर्थ मत भटको, मै बाबाजी महाराजकी आज्ञानुसार रहूँगा। किन्तु एकबार सागर जाना है। अभी मेरी पुस्तकें आदि वैसी ही रखी है। उनकी व्यवस्था पर-मावश्यक है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

●

लाला मगलसैनजी,

दर्शन विशुद्धि।

हमे किसीका सहवास पसन्द नही। और न इससे कल्याण

होता। कल्याणका मार्ग एकतामे है। अनेकता हीने तो ससार बना रखा है। यदि हम अपना हित चाहे तो परसे ममत्व मिटावे, न कि जोडें। हमको तो अन्तरङ्गसे यहाँ आनेसे विशेष लाभ नही हुआ, प्रत्युत कई अशमे हानि हुई। मैं उस समागमको चाहता हूँ जो पर-की आशा न करे। बाबाजी मेरे मित्र तथा पूज्य हैं। जैसी उनकी आज्ञा होगी वैसा ही करूँगा। शेष सर्वसे यथा योग्य।

●

लाला मगलसैनजी,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, बहुत क्या लिखे? कल्याणपथ कल्याणमे है। हम अन्यमे देखते है। हे भगवन् आत्मन्! अब तो इस पराधीन बधनके जालसे पृथक् हो। इन परद्रव्योके आश्रय छोड। गाथा ४०८, ४०९ समयसार लिग छोडनेका यह आशय है जो देहा-श्रित लिगमे ममत्व छोडना। अनादिसे परके आश्रय ही तो रहे, इसीका नाम बध है। मोक्ष नाम तो परसे भिन्न होनेका है। कब ऐसा दिन आवे जो इन परवस्तुओंसे ममत्व छूटे। निर्मल आशय ही मोक्षमार्ग है। क्रिया तो परद्रव्याश्रित त्यागनी ही पडेगी। हमने २५ दिन मौन रखा। आगे एक दिन मौन और एक दिन बोलनेका विचार है। जितने झंझटसे बचे उतने ही कल्याणके पास जावेगे।

●

श्री महाराज इच्छाकार

आपकी जो आज्ञा हो सो मुझे स्वीकार है। मंगलसैनका पत्र आया कि सर्वसे उत्तम स्थान शिखरजी है। मैं ६ मास आपके साथ रहूँगा, यह दृढ निश्चय है, किन्तु एकबार विशेष कार्यके लिये सागर

जाना पडेगा और एक मासमे आपके पास आऊँगा। वहां आदमीके भेजनेकी आवश्यकता नहीं, आने-जानेमे व्यर्थ व्यय होगा। यदि आपका शुभागमन हुआ तब आप जैसी आज्ञा करेंगे सो करूँगा। यदि आप न आसकें तो मैं वहाँ आऊँ या सागर होकर आऊँ ? शीघ्र उत्तर दीजिये। आपका पत्र आने पर वैसा करूँ। जब तक आपका पत्र न आवेगा, यही रहूँगा। शेष सर्वसे यथा योग्य कहना।

●

श्रीयुत लाला मगलसैनजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

समताभाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोका मुख्य कर्तव्य है और सर्व शिष्टाचार है। उपयोग लगानेकी आशासे सर्वत्र जाईये, परन्तु अन्तिम बात यही है, जो चित्तवृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्न ही सराहने योग्य है।

●

श्रीयुत लाला मगलसैनजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। प्रशस्त भाव ही ससार-बन्धनके नाशका मूल उपाय है। शास्त्रज्ञान तो उपायका उपाय है। यावत् हमारी दृष्टि परोन्मुख है, तावत् स्वोन्मुख दृष्टिका उदय नही। यद्यपि ज्ञान स्वपरव्यवसायी है। परन्तु जब स्वोन्मुख हो तब तो स्वकीय रूपका प्रतिभास हो। ज्ञान तो केवल स्वरूपका प्रतिभासक है, परन्तु तद्रूप रहना, यह बिना मोहके उपद्रवके ही होगा। कहने और करने-मे महान् अन्तर है। आप जानते हैं, प्रथम सम्यग्दर्शनके होते ही जीवके पर पदार्थोमे उदासीनता आजाती है। और जब उदासीनता-

की भावना-दृढतम होजाती है, तब आत्मा ज्ञाता-दृष्टा ही रहता है। अत आतुर नही होना। उद्यम करना हमारा पुरुषार्थ है। हम आज ईसरी जा रहे है। अत पत्र ईसरीके पतेसे देना। यद्यपि यहाँकी जलवायु बहुत उत्तम है, परन्तु उदयकी बलवत्ता वही ले जा रही है। श्रीप्रभुपार्श्वके ज्ञानमे जो देखा है वही होगा।

●

श्रीयुत लाला मगलसैनजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने, मेरी सम्मति तो यह है। इस कथोपकथनकी शैलीको छोड कर कर्तव्य-पथमे लग जाना ही श्रेयस्कर है। कल्याण करनेवाला आप है। पर पदार्थकी आकाक्षा ही बाधक है। परके सम्बन्धसे रागादिक ही होते है। और रागादिकोंके नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है। अत नि शक होकर निराकुलता रूप उद्योगद्वारा ही आत्मतत्त्वकी विशुद्धि होगी। अत जो आकुलताके उत्पादक हो, उन्हे सर्वथा त्यागकर स्वात्मगुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चाहिये। अपनी मण्डलीको मोक्षमार्गमे साधक जान अभी आप सर्वलोक एकान्त, अपने ही ग्रामोके उपवनोमे २ या ४ दिन अवसर पाकर रहनेका अभ्यास करोगे, अधिक लाभ उठाओगे। हमारे सवारी आदिका त्याग है। अन्यथा हम उन्ही आपके उपवनोमे झोपडी बना कर रहते। बाह्य साधन वहाँ योग्य थे। चिन्ता किसी बातकी न करना। मेरी तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी चिन्ता न करो। मोक्षपथमे लग जाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है। बुधजन छहढाला अवश्य देखना, बहुत ही मार्मिक है तथा एकबार जब आपकी मण्डली इकट्ठी हो उसका पाठ करना। अधिक क्या लिखे? शेष यथा योग्य।

●

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी,

दर्शन विशुद्धि।

अब तो ऐसी परिणति बनाओ जो हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला, वह बुरा, यह वासना मिट जावे, यही वासना बधकी जान है। आजतक इन्ही पदार्थोंमे ऐसी कल्पना करते-करते ससार हीके पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्यवस्तुओंको छोड दिया। किन्तु इनसे कोई तत्त्व न निकला। निकले कहाँसे ? वस्तु तो वस्तुमे है। परमे कहाँसे आवे ? परके त्यागसे क्या ? क्योकि यह तो स्वय पृथक् है। उसकी चतुष्टय स्वय पृथक्। किन्तु विभाव-दशामे जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्यायका त्याग ही शुद्ध स्वचतुष्टयका उत्पादक है। अत उसकी ओर दृष्टि-पात करो, लौकिक चर्चाको तिलाजलि दो। आजन्मसे वही आलाप तो रहा, अब एक बार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन हो जावो। अनायास सर्व दु खकी सत्ताका अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखे ? आप अपने साथीको समझा देना। यदि अब द्वन्द्वमे न पडे तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्वके फलकी रक्षाके अर्थ फिर द्वन्द्वमे पडना कहाँतक अच्छा होगा, सो समझमे नही आता। इसे शान्ति मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी, परन्तु अभी ज्ञानमे नही आती, धतूरेके नशेमे धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है। आपका अनुरागी है समझा देना।

●

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

बन्धुवर ! कल्याणपथ निर्मल अभिप्रायसे होता है। इस आत्मा-ने अनादिकालसे अपनी सेवा नही की, केवल पर पदार्थोंके सग्रहमे ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान् अर्हन्तका यह आदेश

है जो अपना कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थोंमे जो आत्मीयता है वह छोडो। यद्यपि परपदार्थ मिलकर अभेदरूप नही होते, किन्तु हमारी कल्पनामे वह अभेदरूप ही हो जाते है। अन्यथा उनके वियोगमे हमे क्लेश नही होना चाहिये। धन्य उन जीवोको है जो इस आत्मीयताको अपने स्वरूपमे ही अवगत कर अनात्मीयपदार्थोसे उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याणके भागी होते हैं। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य पदार्थ कुछ भी बाधक नही, और न साधक है। साधक-बाधक तो अपनी ही परिणति है। ससारका मूल हेतु हम स्वय है। इसी प्रकार मोक्षके भी आदि कारण हम ही है। और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहजभावोकी महिमा है। और जब-तक उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मीका साम्राज्य मिलना असम्भव है। उसकी कथा तो अजेय है। सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म सग्रहरूप होगये हैं, उनके अभाव बिना शुद्ध स्वरूपात्मक मोक्ष-प्राप्ति दुर्लभ है, अत जहाँतक उद्यमकी पराकाष्ठा इस पर्यायसे हो सके केवल एक मोहके कृश करनेमे ही उसका उपयोग करिये। और जहाँतक बने, परपदार्थके समागमसे बहिर्भूत रहनेकी चेष्टा करिये। यही अभ्यास एकदिन दृढतम होकर ससारके नाशका कारण होगा। विशेष क्या लिखू ? विशेषता तो विशेष हीमे है। आजकलका वता-वरण अति दूषित है, इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

●

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

मैं क्या उपदेश लिखूँ ? उपदेश और उपदेष्टा आपकी आत्मा स्वयम् हैं। जिसने आपनी आत्मपरिणतिको मलिन भावोसे तटस्थता धारण कर ली, वही ससारसमुद्रके पार हो गया। यह बुद्धि छोडो।

परसे न कुछ होता है, न जाता है । आपहीसे मोक्ष और आपहीसे ससार है ।

●

श्रीयुत महाशय,

दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने ।

आपने जो आस्राव्य और आस्रावकके विषयसे प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है ।

आत्मा और पुद्गलको छोडकर शेष ४ द्रव्य शुद्ध हैं । जीव और पुद्गल ही २ द्रव्य हैं, जिनमे विभावशक्ति है । और इन दोनोमे ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्वारा विकार्य्य और विकारकभाव हुआ करते है । जिस कालमे मोहादिकर्मके उदयमे रागादिरूप परिणमता है, उस कालमे स्वय विकार्य होजाता है । और इसके रागादिक परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है । अत उसका विकारक भी है । इसका यह आशय है, जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते है, और पुद्गलकर्मका निमित्त पाकर जीव स्वय रागादिरूप परिणम जाता है । अत आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रवका करनेवाला भी है । इसी तरह जब आत्मामे रागादि नही होते उस कालमे आत्मा स्वयं सम्वार्य्य और सवरका करनेवाला भी है । अर्थात् आत्माके रागादि निमित्तको पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते थ अब रागादिकके बिना स्वय तद्रूप नही होते, अत सवारक भी है ।

अत मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तकोंका अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञानकी आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही

न हो किन्तु उसके अन्दर मोहादिभाव न हो। ज्ञान मात्र कल्याण मार्गका साधक नही। किन्तु रागद्वेषकी कल्मषतासे शून्य ज्ञान मोक्ष-मार्गका साधन क्या, स्वय मोक्षमार्ग है। जो विष मारक है, वही विष शुद्ध होनेसे आयुका पोषक है। अत चलते, बैठते, सोते, जागते, खाते, पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको कलकित नही करता वही जीव कल्याणमार्गका पात्र है।

बाह्यपरिग्रहका होना अन्य बात है। और उसमे मूर्च्छा होना अन्य बात है। अत बाह्यपरिग्रहके छोडनेकी चेष्टा न करो, उसमे जो मूर्च्छा है, ससारकी लतिका वही है, उसको निर्मूल करनेका भगीरथ प्रयत्न करो, उसका निर्मूल होना अशक्य नही। अन्तरग-की कायरताका अभाव करो, अनादि कालका जो मोहभावजन्य अज्ञानभाव हो रहा है उसे पृथक् करनेका प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्तामे लौकिक मनुष्य सलग्न रहते हैं कि हे प्रभो! हमारे कर्म-कलक मिटा दो, आप बिना मेरा कोई नही, कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? इत्यादि करुणात्मक वचनो द्वारा प्रभुको रिझावनेका प्रयत्न करते है, प्रभुका आदेश है—यदि दु खसे मुक्त होनेकी चाह है, तब यह कायरता छोडा, और अपने स्वरूपकी चितना करो। ज्ञाता दृष्टा बाह्य मत जाओ। यही कल्याणका पथ है।

तदुक्तम्—य परमात्मा स एवाह योऽह स परमस्तत।
अहमेव मयोपास्य नान्य कश्चिदिति स्थिति॥

जो परमात्मा है वही मै हूँ और मै हूँ सो परमात्मा है। अत मै अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नही, ऐसी ही वस्तुमर्यादा है।

यह अत्युक्ति नही। जो आत्मा रागद्वेष शून्य हो गया वह निर-न्तर स्वस्वरूपमे लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है। उपकार अप-कारके भाव रागी जीवोमे ही होते हैं। अत परमात्माकी भक्तिका यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होनेकी चेष्टा करो। भक्तिका अर्थ गुणानुराग है, सो यह भी अनुराग, यद्यपि गुणोके विकासका बाधक है,

फिर भी उसका स्मारक होनेसे निचली दशामें होता है किन्तु सम्यग्यानी उसे अनुपादेय ही जानता है। अत आत्माके बाधक कारणोमें अरुचि होना ही आत्मतत्त्वको साधक चेष्टा है। अत परमात्माको ज्ञानमे लाकर यह भावो, यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा और मैं इसका आराधक इस भेद-भावनाका अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्माके अन्तरको स्पष्टतया जान अन्तरके कारण मेट दो अर्थात् अन्तरका कारण रागादिक ही तो हैं। इन्हे नैमित्तक जान इसमे तन्मय न हो। यही इनके दूर होनेका उपाय है, जहाँतक अपनी शक्ति हो इन्ही रागादिक परिणामोंके उपक्षीणका प्रयास करना। जब हमे यह निश्चय हो गया जो आत्मा परसे भिन्न है तब परमे आत्मीयताकी कल्पना क्या हमारी मूढताका परिचायक नही है। तथा जहाँ आत्मीयता है वहाँ राग होना अनिवार्य है। अत यदि हम अपनेको सम्यक् ज्ञानी मानते हैं, तब हमारा भाव कदापि परमे आत्मोयताका नही होना चाहिए। रागादिकोका होना चारित्रमोहके उदयसे होता है। हो, किन्तु अहबुद्धिके अभाव होनेसे अल्पकालमे निराश्रित होनेसे स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तोर्थकर प्रभु केवल सिद्ध भक्ति करते है। अत उनके द्वारा अतिथिसविभागरूप दान होनेकी सभावना नही।

●

श्रीयुत महोदय खेमचन्दजो तथा श्रीमूलशकर बाबूजी

योग्य दर्शन विशुद्धि।

पत्र आपका आया, समाचार जाना। आप जानते हैं आत्माका स्वभाव देखना-जानना है। और वह देखना-जानना हर अवस्थामें रहता है। हाँ, तरतम भावसे रहता है। परन्तु ज्ञानका अभाव नही होता, यही आत्माके अस्तित्वका द्योतक है। वही एक ऐसा गुण है

जो ससारके सब व्यवहारोका परिचय करता है। इस गुणमे न सुख देनेकी शक्ति है, न दु ख देनेकी शक्ति है। केवल इस गुणका काम जानना है। जब आत्मामे ज्ञानावरणका सम्बन्ध रहता है और उसकी क्षयोपशम अवस्थामे ज्ञानका हीनाधिक रूपसे विकास होता है। और जितना ज्ञानावरणका उदय रहता है, वह ज्ञान गुणका विकास नही होने देता। इस प्रकार इस ज्ञानकी अवस्था रहती है। तथा दर्शनावरण, अन्तराय कर्मका भी इसी तरह सबध है। दर्शनावरणकी ज्ञानावरणके सदृश ही व्यवस्था है। अन्तराय कर्म भी इसी तरहका है। किन्तु इन तीन घातियोके सदृश आत्मामे एक मोहनीय कर्म है, जिसका प्रभाव इन सर्वसे विलक्षण और अनुपम है। उसके दो भेद है। एकका नाम दर्शनमोहनीय, और दूसरेका नाम चारित्रमोहनीय है। यह दर्शनशक्ति और चारित्रशक्तिके विकाशका प्रतिबध नही करता, किन्तु कामला रोगकी तरह श्वेत शखको पीत शख दिखानेकी तरह विपरीत श्रद्धान द्वारा शरीरादिकमे आत्मत्त्व कल्पनाको कराके आत्माको अनन्त ससारका पात्र बना देता है।

यह ससार कोई वस्तु नही। केवल कर्मादिकके सबधसे रागद्वेष वशीभूत होकर नाना शरोरोमे आत्माका सयोग और वियोगरूप जन्म और मरण ही का नाम ससार है। और इस ससारका मूल कारण निमित्तकारणकी अपेक्षा मोहकर्म और उपादान कारणकी अपेक्षा मोह, राग, द्वेषमय आत्मा है—अत सर्वसे पहले हमारा यह दृढ निश्चय होना चाहिये कि इस ससारकी उत्पत्तिमे हमारा ही हाथ है। अल्पकालको मान लो कि मोहरूप पुद्गल भी तो कारण है। ठीक है। परन्तु उसपर आपका क्या अधिकार है ? क्या आपमे ऐसी सामर्थ्य हैं जो उन पुद्गलोको अन्यथा परिणमन करा दे ? नही है। हाँ, यह अवश्य है जो आपका रागादि परिणाम है उसे विभाव जान उसके होने पर यदि उसमे आसक्त नही हुए, तब आगामी उस रूपका तीव्र बध न होगा, जैसा कि आसक्त होने पर होता है।

ऐसा अभ्यास करने पर कभी ऐसा अवसर आवेगा—जो रागादिक होनेपर भी आगामी उन रागादिकोका बध न होगा।

नारकी नपुसक है। यदि उसको सम्यग्दर्शन हो गया, तब नपु-सकादि प्रकृतियोका बंध नही होता। तथा कर्मोंकी अनेक अवस्था हो जाती है, यह पुरुषार्थका काम है, केवल कथासे नही।

इससे यह तत्त्व निकला, यदि अन्तरगसे रागादिक करनेका अभिप्राय आत्मासे निकल गया तब रागादिक होनेपर भी उनके स्वामित्वका अभाव होनेसे आत्मा अनत ससारका पात्र नही बनता। अभिप्राय ही ससारका जनक है। जिसे इस वृश्चिक डकने नही डसा, वह ससारके बधनसे मुक्त हो चुका। परन्तु हम अभिप्रायको निर्मल करनेकी चेष्टा नही करते। केवल दुराग्रहसे किसी मतके पक्षपातमे अपनी आत्माको पतन कर ससारको तुच्छ और अपनेको महान् माननेमे अपनेको कृतकृत्य मान लेते है। फल इसका यह होता है जो हम कभी भी शातिके पात्र नही बनते। सत्यमार्ग तो यह है जो आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है उसे मोहने रागद्वेषात्मक बना रखा है। उस मोहको दूर कर रागद्वेषरूप विकारोसे बचा लेना ही उसका कल्याण है।

यह रागद्वेष कैसे छूटे ?

उसका यह उपाय है। प्रथम तो स्वानुभवसे आत्मतत्त्वकी यथार्थ श्रद्धा करे। स्वानुभव कैसे हो ? जैसे परोन्मुख होनेसे परका ज्ञान होता है। तथा जो परका जाननेवाला है, वही जो स्वोन्मुख होता है, अपना जाननेवाला स्वयमेव हो जाता है। केवल उपयोग बदलने-की आवश्यकता है। तब यह सहज ही समझमे आ जावेगा। आत्मा परको क्या जानता है ? परके निमित्तसे जो आत्मामे परिणमन होता है वह आत्मा जानता है। व्यवहार ऐसा होता है जो आत्मा परका जानने वाला है, जैसे दर्पणमे जब मुखका प्रतिबिंब पडता है

तब ऐसी प्रतीति होती है, जो दर्पणमे मुख है। वास्तव रीतिसे दर्पणमे मुख नही, किन्तु मुखके सदृश परिणमन हो रहा है। किन्तु वह परिणमन मुखका नही, दर्पण ही का है। इसी तरह ज्ञेयकी दशा जानना।

परन्तु हमारे अनादिका इतना बलवान मोह है जो हम ज्ञानमें प्रतिभासित पदार्थोंको अपना मान अनुकूल और प्रतिकूलकी कल्पना कर किसोके सद्भाव और किसीके असद्भाव करनेमे अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते है। फल इसका रज्जूमें सर्प माननेके सदृश भयावह ही होता है।

जानना मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोके होता है। परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका स्वाद लेता है। स्वादका अर्थ यह है, जो उसकी कल्पना पदार्थके सम्बन्ध और अन्तरग मोहके उदयसे इष्टानिष्टात्मक हो जाती है। सम्यक्दृष्टि परको पर मान केवल ज्ञान ही अपना मान, इष्टानिष्ट कल्पनासे मुक्त रहता है। यही उसके ज्ञानमे विलक्षणता है। अत ज्ञेयके भासमान होनेपर भी दु खी नही होता, और इतर दु खी हो जाता है।

उनके प्रश्नोके उत्तर प्राय सक्षेपसे इस पत्रमे आगये है। हमको अवकाश नही तथा आजकल गर्मी अधिक पडती है। अत अब पत्र विशेष न देना।

आप तो सानन्दसे मोक्षमार्गका स्वाध्याय करो और विशेष झझटोमे न पडो। यदि विशेष अवकाश मिले तब पञ्चास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार और अष्टपाहुडका स्वाध्याय कर तत्त्वकी निर्मलता करो, तथा सर्व समालोचनाओका त्यागकर स्वात्मगत दोषोकी समालोचना करो। जब यह कार्य हो चुके तब अन्य कार्योंकी चिन्ता करना, व्यर्थ समालोचना आत्मोष्कर्षकी साधक नही।

इस ससारसे वही जीव पार जावेगा जो स्वगत विपरीताभिनि-

वेशको त्यागकर सम्यग्ज्ञानी हो। रागद्वेषकी निवृत्ति करेगा। और जो मतके पक्षपातमे पडकर अन्यको भला-बुरा कह कर ही कृतार्थ आपको मान लेता है वह किस दशाका स्वामी होगा ? भगवान् जाने। सत्य-निर्णयके अर्थ मतोका अभ्यास करना बुरा नही किन्तु केवल पाडित्य-कलाके सम्पादन निमित्त अभ्यास करना निवृत्ति-मार्गमे साधक नही।

●

महाशय

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने।

सम्यक्दृष्टिके दर्शनमोहके अभावसे, स्वपर भेदज्ञान हो गया है। इसीसे अभिप्रायमे उसके रागसे राग नही, और द्वेषसे द्वेष नही है। किन्तु चारित्रमोहका उदय होनेसे राग भी होता है और द्वेष भी होता है, हाँ तथा जो उसे अबन्ध कहा, उसका तात्पर्य अनन्तानुबधी कषाय और मिथ्यात्वके द्वारा जो अनन्त ससारका भाजन था, वह मिट गया। तथा जो मिच्छत्तहुड इत्यादि ४१ प्रकृतियाँका बध होता था वह चला गया। सर्वथा बधका भी अभाव नही और न सर्वथा इच्छाका अभाव है। इसकी चर्चा समयसारमे स्पष्ट है। विशेष वहासे जानना। निर्जरा अधिकारमे अच्छी तरहसे इसका विवेचन है। श्री छोटेलालजी इन्दौर गये है।

महाशय,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने।

दर्शनोपयोगकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कही है। क्योकि उपयोग निरतर चचल रहता है। और ध्यानकी उत्कृष्ट स्थितिमे भी अन्त-र्मुहूर्त्त है। तथा ध्यानको आचार्योंने ज्ञानकी स्थिरता कही है। अतः

दर्शनोपयोग भी अन्तर्मुहूर्त्तसे अधिक नही हो सकता। तथा अन्तर्मु-हुर्त्तका बहुत भेद है। समयाधिक आवलिसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रारभ होता है और १ समय कम ९ घडीका उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है। मध्यमके बहुत भेद है। सतत् दर्शनोपयोगका यह अर्थ है, जो चेतनाका परिणमन २ तरहका होता है। उपयोग १ कालमे १ ही होता है। चाहे दर्शनोपयोग हो, चाहे ज्ञानोपयोग हो। छद्मस्थके क्रमवर्ती उपयोग होते है। अर्थात् दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानो-पयोग होते है। केवली भगवानके आवरणका अभाव होनेसे १ ही समयमे चेतनाका परिणमन स्वच्छ होनेसे दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनोका युगपत् व्यवहार है। वास्तवमे केवलज्ञानहीमे स्वात्म जानने को दर्शनोपयोग और परके जाननेको ज्ञानोपयोग कहते है। पडित राजेन्द्रकुमारजीने जो निद्राके कालमे ज्ञानोपयोग कहा उसका अर्थ यह है—निद्रा जो है सो दर्शनको घात करनेवाली है। अत ज्ञानो-पयोग रहनेमे कोई बाधा नही। राजवार्तिकमे छद्मस्थके दर्शन पूर्वक ज्ञानोपयोग होता है, यह बात सामान्यसे है। स्मरणादिमे यह बात नही। परम्परामे कुछ बाधा नही।

दर्शन विशुद्धि।

अपडिक्कमण दुविह, अपच्चक्खाण तहेव विण्णेय।

अप्रतिक्रमण दो प्रकारका है। और अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है। पूर्व अनुभूत जो विषय रागादि उनके स्मरणरूप अप्रति-क्रमण है। और भावि रागादि विषयकी जो आकाक्षा है तद्रूप ही अप्रत्याख्यान है। जिस द्रव्यके निमित्तसे रागादिक होते थे उसका त्याग जो न करना उसे द्रव्य अप्रतिक्रमण कहते है और उसके निमित्तसे जो रागादिक भाव होते थे उनका त्याग न करना यह भाव अप्रतिक्रमण है। वास्तवमे आत्मा अनात्मरूप जो रागादिक हैं उनका अकर्ता है। अन्यथा अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानका जो दो प्रकारका उपदेश है वह व्यर्थ हो जावेगा। जो अतिक्रमण और

अप्रत्याख्यानको द्रव्य और भाव द्वारा दो प्रकारका बताया है वह द्रव्य और भावके परस्पर निमित्त और नैमित्तिक भावको विस्तारता को जनाता हुआ आत्माका कर्तृपना जनाता है। इससे यह आया— परद्रव्य निमित्त है, और आत्माके जो रागादि भाव हैं वे नैमित्तक है। यदि ऐसा न माना जावे अर्थात् रागादिक भावोको परद्रव्य निमित्तक न माना जावे तब आत्मा ही उनका निमित्त होगा, ऐसा माननेसे आत्मामे नित्य ही कर्तृत्व आवेगा, जो असगत है।

इस प्रकार अप्रत्याख्यानको दो प्रकारका जानना। इसका मम्बन्ध भावि कालसे है।

(२) प्रदेश प्रकम्पनसे क्षेत्रान्तर नही होता। अत इसकी सहायताके अर्थ धर्मद्रव्यकी आवश्यकता नही।

(३) मोक्ष हेतु तिरोधायि भावका एक ही अर्थ है। विभक्ति भिन्न होनेसे मूल पदार्थका वही अर्थ है।

एक बार यदि आपको दो दिनका अवकाश मिले तब समक्षमे सर्व निर्णय होगा।

तत्त्वचर्चा ही कल्याणका पथ है। परन्तु साथ-साथ आभ्यन्तरकी निर्मलता होना चाहिये। हम लोग बाह्य निमित्तोकी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाते है। और जो कल्याणका वास्तविक मार्ग है, उसका स्पर्श भी नही करते, निमित्तकारणोमे बल्वत्ता नही, और न होगी। केवल हमारी कल्पना इतनी प्रबल उस विषयमे अनादि कालसे चली आ रही है, जो अपने स्वरूपकी यथार्थताको राहुकी तरह ग्रास किए है। एक बार भी यदि उसका स्वाद आ जावे तब यह आत्मा अनत ससारका पात्र नही हो सकता। हमने बाजारसे कुछ दिनको वस्तु लेना छोड दिया है। अत आपके पत्र ही के ऊपर उत्तर लिख दिया।

सर्व आगम और सकल परमात्माकी दिव्य वाणीमे यही आया है जो परकी सगति छोड आत्माकी सगति करो, यही कल्याणका पथ है।

●

श्रीयुत माननीय महाशय बाबू खेमचन्द्रजी

योग्य दर्शन विशुद्धि ।

पत्र आया, समाचार जाने । यहा पर प० देवकीनन्दनजीकी पञ्चाध्यायीवाली टीका नही है ।

आप पदार्थोके ज्ञानके अर्थ यदि कुछ न्यायग्रथोका अवसर पाके अभ्यास कर ले, तब बहुत ही लाभदायक होगा ।

ससाररूपी वनमे भ्रमते हुए जीवने वास्तव मार्गका अनुसरण नही किया, इसीसे इसकी यह अवस्था हा रही है । कोई मार्गकी प्राप्ति कठिन नही । केवल दुराग्रहके त्यागनेकी आवश्यकता है । पहले तो इस शरीरसे ही इसका ममत्व छूटना कठिन है । ऊपरी दृष्टिसे इसे छोडकर भी जीव सुखी नही होता । बहुतसे धर्मके ऊपरी अशको जानकर सप्रदायके आवेगमे ससारको मिथ्यादृष्टि समझनेमे ही अपनी प्रभुता समझते है । कल्याणमार्गका पोषक यह सप्रदाय-प्रेम नही । कल्याणमार्गका कारण तो सम्यग्ज्ञानपूर्वक कषायोका निग्रह है । कषाओकी प्रवृत्ति उसीके रुक सकती है जिसके अतरग मूर्च्छाके अर्थ बाह्य परिग्रह नही । श्री कुन्दकुन्द महाराजका कहना है कि बाह्य प्राणोके वियोग होनेपर बध हो अथवा न भी हो, नियम नही । यदि प्रमादयोग है, बध है, प्रमादयोगके न होनेपर बध नही । किन्तु बाह्य उपाधिके सद्भावमे नियमसे बध है । क्योकि उसका स्वत्व ही अतरग मूर्छासे रहता है । अत यदि कल्याणकी ओर लक्ष्य है तब इस कषायशत्रुके निपातके अर्थ अपने परिणामोके अनुरूप इसी ओर लक्ष्य देनेकी आवश्यकता है । यदि वर्तमानमे त्याग न हो सके तब कम-से-कम उदासीन भाव तो होना ही चाहिये । यह उदासीन भाव ही कालान्तरमे वीतराग भावका उत्पादक हो जावेगा। यह जो विकल्प आत्मामे होते है उन्हे औदयिक भाव जान अनात्मीय ही है, ऐसा दृढ निश्चय रहना ही स्वरूपप्राप्तिका मुख्य उपाय है ।

जैसे उष्ण जल उष्णताके अभावमे ही तो शीत जल होगा, इसी तरह इन औदयिक भावोकी असत्तामे ही तो आत्मिक गुणोका वास्तविक विकास होगा।

आजकल मनुष्य दुनियाकी समालोचना करता है, परन्तु अपनी समालोचनाका ध्यान नही, जब तक अपने परिणामो पर दृष्टि नही, कुछ नही।

जो भाई साहब (मूलशकरभाई) यहाँ आते है उनसे धर्मस्नेह कहना। बहुत भव्य प्रकृतिके हैं।

●

श्रीयुत मूलशकरजी,

योग्य दर्शन विशुद्धि।

आप सानन्द आईये। और जहाँतक बने, जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये। कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है। इस मूर्च्छाने ही जिनधर्मंमे नाना भेद कर दिये, इसका मूल कारण मूर्च्छा (परिग्रह) है। इसके सद्‌भावमे अहिंसा धर्मका विकास नही होता, अत जहाँ मूर्च्छा है वही परिग्रह है और जहाँ परिग्रह है वहाँ महाव्रतका अभाव है।

मनकी चचलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है, और कुछ कारण नही।

मनके जानेका दु ख नही, दु ख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओका है। वास्तवमे उपाय तो जो बन सके तो उदय आनेपर हर्ष-विषाद न हो। यदि हो भी जावे तब उत्तर कालमे वासना नही रहने दे; वही तक रहने दे।

जैसा मनुष्य लौकिक कार्योंमे मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नही लगाता, यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओंसे हम अन्तरगसे

चित्तवृत्ति हटाकर अपनी आभ्यन्तर दृष्टिको स्वात्माकी ओर लगा दे, कल्याणका पथ आपसे आप मिल जावे। गरम जलको ठण्डा करनेका उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है। आप आकुलित मत हो। घर रहकर भी अन्त करण निर्मल हो सकता है। अपनी आत्मापर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है। परके द्वारा कल्याण न किसीका हुआ, और न होता, और न होगा। निमित्तका अर्थ तो यही है, मुखसे उपदेश देगा, परन्तु उसका मर्म तो स्वयं जानना होगा तथा उसे स्वय करना होगा।

●

श्रीयुत महाशय,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने।

हमारे पास इतना समय नही, जो इतने लम्बे प्रश्नोके उत्तर देनेमे लगावे, यह तो सम्मुख चर्चाके द्वारा शीघ्र ही हल हो जाते है। तत्त्वकी मननताका मुख्य प्रयोजन कलुषताका अभाव है। आप जहाँ तक बने, पचास्तिकाय तथा अष्टपाहुड, प्रवचनसारका अवकाश पाकर स्वाध्याय करना। अवश्य स्वीय श्रेयोमार्गमे सफलीभूत होगे। मै अभी हजारीबाग नही गया, कुछ दिनका विलम्ब है।

●

श्रीयुत महाशय खेमचन्दजी,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। भाई साहब! सकोचकी कोई बात नही। आप धर्मात्मा जीव है। परन्तु अधिक परिग्रह ही तो पापकी जड है। जितना सग्रह किया जावे उतना ही दु खजनक है। निष्परिग्रही होना ही मोक्षमार्ग है। जिनके आभ्यन्तर मूर्च्छा गई वही

तो मुनि है—मोक्षमार्गी है। इस कालमे स्वांग रह गया—वचनकी पटुता तथा पाडित्यकला मोक्षमार्ग नही। मोक्षमार्ग तो राग-द्वेषकी निवृत्ति है। जो भाई आना चाहते हैं, आवे, मै ५ अप्रिल तक ईसरी ही रहूँगा। आप गाढ रीतिसे स्वाध्याय करिए। कल्याणका पथ भेदज्ञान है। अत जहाँतक बने, उसपर दृष्टि दीजिए और भक्ष्य पदार्थ भोजनमे आवे, इसकी चेष्टा करिए। जब कभी आप मिलेंगे, विशेष बात कहूँगा—अपने छोटे भाईसे दर्शन विशुद्धि तथा अपनी मडलीसे यथा योग्य।

●

श्रीयुत महाशय,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। आत्माके जो मध्य आठ प्रदेश है वह सावरण है। समुद्घातके समय घनाकार लोकके मध्य ही उनकी स्थिति रहती है। और शेष प्रदेश ३४३ घनाकार लोकके प्रदेशोमे विस्तृत हो जाते है इसमे अखण्डताको क्या बाधा है? आत्माके अनुजीवी गुणोका ही वास्तवमे घात होता है, उनमे एक सुख नामक भी गुण है उसका घातक कोई कर्म नही। यह सर्व घातिया कर्म ही उसके घातक है। अतएव त्रयोदश गुणस्थानमे ही उसका पूर्ण विकास होता है।

एक भाईके विषयमे जो पूछा था, सो यदि उनने नियम ले लिया है कि आजीवन मै औषध न लूँगा तब हम यह सम्मति नही दे सकते है कि वह औषध लेवे और एक दिन बाद उपवासका नियम लिया है तब यह भी सम्मत्ति नही दे सकते है कि उसे भग करे, किन्तु यदि उपवासके दिन आरम्भ आदि व्यापार करते हैं तब अनुकूल त्याग नही। क्योकि आगमानुकूल उपवासका दिन धर्मध्यानमे जाना चाहिये। कषाय-निग्रहके अर्थ उपवास किया जाता है। तथा "शक्ति-तस्त्यागतपसी" यदि शक्तिको उल्लघकर उपवास है तब भी आगम

प्रतिकूल है। जिस उपवासमे अन्तरग शान्ति न आवे वह उपवास निर्जरा तो दूर रही, पुण्यबन्धका भी कारण नही। तप उसको कहते हैं जहा इच्छाका निरोध है, जहाँ अन्तरगमे सक्लेशता हो, वहाँ काहेका इच्छानिरोध? परन्तु आजकल मनुष्य आवेगमे आकर कठिन प्रतिज्ञा कर बैठते है, पश्चात् विपाककालमे दु खी हो जाते है। श्री राजचन्द्रजीके नये विषयमे पूछा सो क्या लिखे? हमारी समझमे उनकी बात या तो उनके अनुयायी समझे या जिन्होने सुना है कि उनका अभिप्राय यह था वह समझे, मै क्या लिखूँ। जो भाई आना चाहते हैं वह चैत्रके अन्ततक आवे तब तो अच्छा। अन्यथा मै वैशाख वदि २ को हजारीबाग जाऊँगा।

●

महाशय,

दर्शन विशुद्धि।

पत्र आया, समाचार जाने। आजकल गर्मीका प्रकोप है—उपयोगकी निर्मलताका बाधक है। अत कुछ दिन बाद प्रश्नोके उत्तर लिखनेकी चेष्टा करूँगा। भाई खेमचन्द्रजी, मै कुछ जानता नही। केवल मुझे श्रद्धा है। अत जहाँतक बने, मुझे इस विषयमे न पाडिए। श्री जयचन्दजी साहब जो लिख गए उससे अच्छा लिखनेवाला अब नही है। आपकी समाजमे समयसारके रोचक है। मेरा ऐसा अभिप्राय है जो समयसार सर्व अनुयोगोकी विधि मिलाता है। उसके हरेक गाथामे अपूर्व रस भरा है। जो मर्मी हो सो जाने। मेरा सर्व मण्डलीसे धर्मप्रेम कहना। और कहना शान्तिका मार्ग न तो स्थानमे है और न शास्त्रोमे हैं न ऐसा नियम है जो अमुक शास्त्रसे ही शान्ति मिलेगी। शान्तिका मूल मार्ग मूर्च्छाके अभावमे है।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

●

समाधिमरण पत्र-पुंज

ये पत्र स्व० उदासीन ब्र० मौजीलालजी सागर वालोके समाधिलाभार्थ उनके प्रत्युत्तरमे पूज्य प० गणेशप्रसादजी वर्णीके द्वारा लिखे गये हैं। एक-एक पक्तिमे आत्मरसिकता झलक रही है। अत जब कभी मन स्थिर हो शान्ति-पूर्वक प्रत्येक वाक्यका परिशीलन करके उसके मतव्यको हृदयगत करना चाहिये। (पत्र नही, ये मोक्षमार्गमे प्रवेश करनेके लिये वास्तविक रत्न हैं।)

योग्य शिष्टाचार!

सत्य दान तो लोभका त्याग है। और उसको मै चारित्रका अश मानता हूँ। मूर्छाकी निवृत्ति ही चारित्र है। हमको द्रव्यत्यागमे पुण्यबधकी ओर दृष्टि न देनी चाहिये, किन्तु इस द्रव्यसे ममत्व-निवृत्ति द्वारा शुद्धोपयोगका वर्धक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है। जहाँ उभय पदार्थका बंध है वही ससार है। और जहाँ दोनो वस्तु स्वकीय २ गुण-पर्यायोमे परिणमन करती है वही निवृत्ति है, यही सिद्धात है। कहा भी है—

श्लोक

सिद्धातोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि सेव्यता।
शुद्ध चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम्॥

एते ये तु समुल्लसति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽह नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्य समग्रा अपि॥

अर्थ—यह सिद्धान्त उदार चित्त और उदार चरित्रवाले मोक्षा-

थियोको सेवन करना चाहिये कि मै एक ही शुद्ध (कर्मरहित) चैतन्यस्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हूँ। तथा ये जो भिन्न लक्षणवाले नाना प्रकारके भाव प्रकट होते है, वे मै नही हूँ क्योकि वे सपूर्ण परद्रव्य है।

इस श्लोका भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदयमे आते ही ससारका आताप कहाँ जाता है, पता नही लगता। आप जहाँ तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्थाकी ओर दृष्टि न देकर निजात्माकी ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्यकी औषधिका प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो उसका ज्ञाता-दृष्टा ही रहना। सो ही समयसारमे कहा है—

गाथा

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्व मम इम हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिगह तु णियदं वियाणंतो॥

भावार्थ—'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसा ज्ञानी पण्डित नही कह सकता। क्योकि ज्ञानी जीव तो आत्माको ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्योसे मनुष्य पर्यायकी उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय २ दो द्रव्य मिलकर सुधा-हरिद्रावत् एकरूप नही परिणमे है। वहाँ तो वर्ण गुण दोनोका एकरूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नही है किन्तु यहाँ पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य है। इनका एकरूप परिणमना न्यायप्रतिकूल है। पुद्गलके निमित्तको प्राप्त होकर आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता है। फिर भी रागादिक भाव औदयिक है। अत बन्धजनक है, आत्माको दु ख-जनक है, अत हेय है परन्तु शरीरका परिणमन आत्मासे भिन्न है

अत' न वह हेय है और न वह उपादेय है। इसही को समयसारमे श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्यने निर्जराधिकारमे लिखा है—

गाथा

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ॥

अर्थ—यह शरीर छिद जावो अथवा भिद जावो अथवा ले जावो अथवा नाश हो जावो, जैसे तैसे हो जावो तो भी यह मेरा परिग्रह नही है।

इसीसे सम्यग्दृष्टिके परद्रव्यके नाना प्रकारके परिणमन होते हुए भी हर्ष-विषाद नही होता। अत आपको भी इस समय शरीरकी क्षीण अवस्था होते हुए कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है।

चरणानुयोगमे जो परद्रव्योको शुभाशुभमे निमित्तत्वकी अपेक्षा हेयोपादेयकी व्यवस्था की है, वह अल्पप्रज्ञके अर्थ है। आप तो विज्ञ है। अध्यवसानको ही बधका जनक समझ उसीके त्यागकी भावना करना और निरतर "एगो मे सासदो आदा णाणदसणलक्खणो" अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो बाह्य पदार्थ है वे मेरे नही है।

मरण क्या वस्तु है? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्यायका वियोग मरण तथा आयुके सद्भावमे पर्यायका सबध सो ही जीवन। अब देखिये, जैसे जिस मन्दिरमे हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भावमे हमको किसी प्रकारका हानि-लाभ नही, तब क्यो हर्ष-विषादकर अपने पवित्र भावोको कलुषित किया जावे। जैसे कि कहा है—

श्लोक

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्राणा. किलास्यात्मनो ।
ज्ञान सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ॥
अस्यातो मरण न किंचिद् भवेत्तद्भी. कुतो ज्ञानिनो ।
नि शङ्क सतत स्वय स सहज ज्ञान सदा विन्दति ॥

अर्थ—प्राणोके नाशको मरण कहते हैं। और प्राण इस आत्माका ज्ञान है। वह ज्ञान सत् रूप स्वय ही नित्य होनेके कारण कभी नही नष्ट होता है। अत इस आत्माका कुछ भी मरण नही है तो फिर ज्ञानीको मरणका भय कहाँसे हो सकता है। वह ज्ञानी स्वय नि शक होकर निरतर स्वाभाविक ज्ञानको सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप सानन्द ऐसे मरणका प्रयास करना जो परपरा मातास्तन्यपानसे बच जाओ। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुवा है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याणका मन्दिर है, अत परपदार्थोकी किंचित् मात्र भी आप अपेक्षा न करे। अब पुस्तक द्वारा ज्ञानाभ्यास करनेकी आवश्यकता नही। अब तो पर्यायमे घोर परिश्रम कर स्वरूपके अर्थ मोक्ष-मार्गका अभ्यास करना उचित है। अब उसी ज्ञान-शस्त्रको रागद्वेष-शत्रुओके ऊपर निपात करनेकी आवश्यकता है। यह कार्य न तो उपदेष्टाका है और न समाधिमरणमे सहायक पडितोका है। अब तो अन्य कथाओके श्रवण करनेमे समयको न देकर उस शत्रु-सेनाके पराजय करनेमे सावधान होकर यत्न पर हो जावो।

यद्यपि निमित्तको प्रधान माननेवाले तर्कद्वारा बहुत-सी आपत्ति इस विषयमे ला सकते है। फिर भी कार्य करना अन्तमे तो आपही-का कर्तव्य होगा। अत जबतक आपकी चेतना सावधान है, निरतर स्वात्मस्वरूप चिंतवनमे लगा दो।

श्री परमेष्ठीका भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायककी ओर ही लक्ष्य रखना, क्योकि मै "ज्ञाता दृष्टा" हूँ, ज्ञेय भिन्न हैं, उसमे इष्टानिष्ट विकल्प न हो, यही पुरुषार्थ करना और अतरगमे मूर्छा न करना तथा रागादिक भावोको तथा उसके वक्ताओको दूरहीसे त्यागना। मुझे आनन्द इस बातका है कि आप नि शल्य हैं। यही आपके कल्याणकी परमौषधि है। ॥ इति ॥

●

महाशय,

योग्य शिष्टाचार।

आपके शरीरकी अवस्था प्रत्यह क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धिसे हमारा कोई घात नही, क्योकि आपने निरतर ज्ञानाभ्यास किया है, अत आप इसे स्वय जानते है अथवा मान भी लो, शरीरके शैथिल्यसे तद् अवयव-भूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती है तथा द्रव्येंद्रियके विकृत भावसे भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमे समर्थ नही होती है किन्तु मोहनीय उपशम जन्य सम्यक्त्वकी इसमे क्या विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उस काल जाग्रत अवस्थाके सदृश ज्ञान नही रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शनगुण ससारका अन्तक है उसका आशिक भी घात नही होता। अतएव अपर्याप्त अवस्थामे भी सम्यग्दर्शन माना है जहाँ केवल तैजस कार्माण शरीर और उत्तर कालीन शरीरकी पूर्णता भी नही तथा आहारादि वर्गणाके अभाव-मे भी सम्यग्दर्शनका सद्भाव रहता है। अत आप इस बातकी रचमात्र आकुलता न करे कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्यो-कि शरीर परद्रव्य है, उसके सम्बन्धसे जो कोई कार्य होने वाला है वह हो अथवा न हो, परन्तु जो वस्तु आत्माहीसे समन्वित है उसकी क्षति करनेवाला कोई नही, उसकी रक्षा है तो ससारतट समीप ही

है। विशेष बात यह है कि चरणानुयोगकी पद्धतिसे समाधिके अर्थ बाह्य सयोग अच्छे होना विधेय है, किन्तु परमार्थदृष्टिसे निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर है। आप जानते है कि कितने ही प्रबल ज्ञानियोका समागम रहे,, किन्तु समाधिकर्ताको उनके उपदेश श्रवणकर विचार तो स्वय ही करना पडेगा। जो मैं एक हूँ, रागादिक शून्य हूँ, यह जो सामग्री देख रहा हूँ परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है। परमात्माके गुणगानसे परमात्मा द्वारा परमात्मपदकी प्राप्ति नही किन्तु परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे ही उस पदका लाभ निश्चित है अत सर्व प्रकारके झझटोको छोडकर भाई साहब! अब तो केवल वीतराग निर्दिष्ट पथपर ही आभ्यन्तर परिणामसे आरूढ हो जाओ। बाह्य त्यागकी वही तक मर्यादा है जहा तक निज भावमे बाधा न पहुँचे। अपने परिणामोके परिणमनको देख कर ही त्याग करना, क्योकि जैन सिद्धान्तमे सत्य पथ मूर्छात्यागवालेके ही होता है। अत जो जन्मभर मोक्षमार्गका अध्ययन किया उसके फलका समय है, इसे सावधानतया उपयोगमे लाना। यदि कोई महानुभाव अन्तमे दिगबर पदकी सम्मति देवे तब अपनी आभ्यन्तर विचारधारासे कार्य लेना। वास्तवमे अन्तरग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पदके पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये, अन्यथा अच्छी तरहसे यह कार्य सम्पन्न करते। हीन शक्ति शरीरकी दुर्बलता है। आभ्यन्तर श्रद्धामे दुर्बलता न हो। अत निरन्तर यही भावना रखना।

"एगो मे सासदो आदा णाणदसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा॥"

अर्थ—एक मेरी शाश्वत आत्मा ज्ञान-दर्शन लक्षणमयी है शेष जो बाहरी भाव है वे मेरे नही है, सर्व सयोगी भाव है ॥"

अत· जहाँ तक बने, स्वय आप समाधानपूर्वक अन्यको

समाधिका उपदेश करना कि समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है तब यह कौनसा विशिष्ट कार्य है। वह तो उन शत्रुओका चूर्ण कर देता है जो अनन्त ससारके कारण है। इति।

इस ससार समुद्रमे गोते खानेवाले जीवोको केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियोने आश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होगे। आपने लिखा कि हम मोक्षमार्गप्रकाशकी दो प्रति भेजते है सो स्वीकार करना, भला ऐसा कौन होगा जो इसे स्वीकार न करे। कोई तीव्र कषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनगीकार करे तो करे, परन्तु हम तो शतश धन्यवाद देते हुए आपकी भेटको स्वीकार करते हैं। परन्तु क्या करे, निरन्तर इसी चिन्तामे रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जो वास्तवमे हम इसके पात्र हो। अभी हम इसके पात्र नही हुये, अन्यथा तुच्छसी तुच्छ बातोमे नाना कल्पनाये करते हुए दु खी न होते। अब भाई सहब! जहा तक बने, हमारा और आपका मुख्य कर्तव्य रागादिकके दूर करनेका ही निरन्तर रहना चाहिये। क्योकि आगम ज्ञान और श्रद्धासे बिना सयतत्व भावके मोक्षमार्गकी सिद्धि नही, अत सब प्रयत्नका यही सार होना चाहिये, जो रागादिक भावोका अस्तित्व आत्मामे न रहे। ज्ञान वस्तुका परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका फल है, किन्तु ज्ञानका फल उपेक्षा नही, उपेक्षाफल चारित्रका है। ज्ञानमे आरोपसे वह फल कहा जाता है। जन्मभर मोक्षमार्ग विषयक ज्ञान सपादन किया, अब एकबार उपयोगमे लाकर उसका आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोगका अभिप्राय लोगोने पर वस्तुके त्याग और ग्रहणमे ही समझ रखा है, सो नही। चरणानुयोगका मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिकके मेटनेका है, परन्तु वह पर वस्तुके सबन्धसे होते हैं अर्थात् पर वस्तु उसका नोकर्म होती है, अत उसको त्याग करते है। मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओके सम्बन्धसे भयभीत

रहता है। मैं तो किसोके समागमकी अभिलाषा नही करता हूँ। आपको भी सम्मति देता दूँ कि सबसे ममत्व हटानेकी चेष्टा करो; यही पार होने की नौका है। जब परमे ममत्वभाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहबुद्धि घट जावेगी, क्योकि ममत्व और अहकारका अविनाभावी सम्बन्ध है, एकके बिना अन्य नही रहता। बाईजीके बाद मैने देखा कि अब तो स्वतत्र हूँ, दान मे सुख होता होगा, इसे करके देखूँ। ६०००) रुपया मेरे पास था। सर्व त्याग कर दिया परन्तु कुछ भी शान्तिका अश न पाया। उपवासादिक करके शाति न मिली, परको निन्दा और आत्मप्रशसासे भी आनन्दका अकुर न हुआ, भोजनादिकी प्रक्रियासे भो लेश शान्तिको न पाया। अत यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शान्तिकी उद्भूति नही, अत सर्व व्यापार उसीके निवारणमे लगा देना ही शान्तिका उपाय है। वाग्जालके लिखनेसे कुछ भी सार नही।

॥ इति ॥

मै यदि अन्तरङ्गसे विचार करता तो जैसा आप लिखते है मै उसका पात्र नही, क्योकि पात्रताका नियामक कुशलताका अभाव है। वह अभी कोसो दूर है। हाँ, यह अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तब दुर्लभ भी नही, वक्तृत्वादि गुण तो आनुषगिक है। श्रेयोमार्गकी सन्निकटता जहाँ जहाँ होती है वह वस्तु पूज्य है। अत हम और आपको बाह्य वस्तुजातमे मूर्छाकी कृशता कर आत्म-तत्त्वको उत्कर्ष बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यासका प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नही होता, साथहीमे पर पदार्थोसे उपेक्षा होनी चाहिये। आगमज्ञानकी प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिता-का फल और ही है। मिश्रीकी प्राप्ति और स्वादुतामे महान् अन्तर है। यदि स्वादका अनुभव न हुआ तब मिश्री पदार्थका मिलना केवल अन्धेकी लालटेनके सदृश है, अत अब यावान् पुरुषार्थ है वह इसीमे कटिबद्ध होकर लगा देना ही श्रेयस्कर है। जो आगमज्ञानके साथ

साथ उपेक्षारूप स्वादका लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है, परन्तु जो अर्जित कर्म हैं उनका फल तो मुझे ही चखना पडेगा, अत कुछ भी विषाद नही।

विषाद इस बात का है जो वास्तविक आत्मतत्त्वका घातक है उसकी उपक्षीणता नही होती। उसके अर्थ निरन्तर प्रयास है। बाह्य पदार्थका छोडना कोई कठिन नही। किन्तु यह नियम नही क्योकि अध्यवसानके कारण छूटकर भी अध्यवसानकी उत्पत्ति अत-स्थलवासनासे होती है। उस वासनाके विरुद्ध शस्त्र चलाकर उसका निपात करना यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है, परन्तु फिर भी वह क्या है ? केवल शब्दोकी सुन्दरताको छोडकर गम्य नही। दृष्टात तो स्पष्ट है, अग्निजन्य उष्णता जो जलमे है उसकी भिन्नता तो दृष्टिविषय है। यहाँ तो क्रोधसे जो क्षमाकी अप्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त हो। ऊपरसे क्रोध न करना क्षमाका साधक नही। आशयमे वह न रहे, यही तो कठिन बात है। रहा उपाय तत्त्वज्ञान, सो तो हम आप सव जानने ही हैं किन्तु फिर भी कुछ गूढ रहस्य है जो महानुभावोके समागमकी अपेक्षा रखता है, यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है। उसकी सेवा क्या है "ज्ञाता दृष्टा", और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकृत जानना।

॥ इति ॥

●

श्रीमान् वर्णीजी,

योग्य इच्छाकार।

पत्र न देनेका कारण उपेक्षा नही किन्तु अयोग्यता है। मै जब अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो उपदेश देनेकी कथा तो दूर रही, अभी मै सुनने और बाँचनेका भी पात्र नही। वचनचतुरतासे

किसीको मोहित कर लेना पाण्डित्यका परिचायक नही। श्रीकुंद-कुदाचार्यने कहा है—

> किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्त-उववासो
> अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्य समणस्स ॥

अर्थ—समताके बिना वननिवास और काय क्लेश तथा नाना उपवास तथा अध्ययन, मौन आदि कोई उपयोगी नही। अत इन बाह्य साधनो का मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्यमे अतत्परता ही मोक्षमार्गका घातक है। जहाँ तक हो, इस पराधीनताके भावोका उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझमे नही आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखनेकी होती है, परन्तु जब स्वकीय वास्तविक दशा पर दृष्टि जाती है तब अश्रु-धाराका प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन्! तूने यह मानव पर्यायको पाकर भी निजतत्त्वकी ओर लक्ष्य नही दिया। केवल इन बाह्य पचेन्द्रिय विषयोकी प्रवृत्तिमे ही सन्तोष मान कर ससारको क्या, अपने स्वरूपका अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विषयक अभिलाषाकी अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्गमे सवर तत्त्व ही मुख्य है। तत्त्वकी महिमा इसके बिना स्याद्वाद-शून्य आगम अथवा जीवनशून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुखकी तरह है। अत जिन जीवोको मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओके अनुत्पादक चरणानुयोग-पद्धति-प्रतिपादित साधनोकी ओर लक्ष्य स्थिर कर, निरन्तर स्वात्मोत्थ सुखामृतके अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओकी प्रबल सेनाका विध्वस करनेमे भगीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे, किन्तु व्यर्थ न जावे, इसमे यत्नपर होना चाहिये। कहाँ तक प्रयत्न करना उचित है? जहाँ तक पूर्ण ज्ञानकी पूर्णता न होय।

"भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥"

अर्थ—यह भेद-विज्ञान अखडधारासे भावो कि जब तक पर-द्रव्यसे रहित होकर ज्ञान ज्ञानमे (अपने स्वरूपमे) ठहरे ।

क्योकि सिद्धिका मूलमत्र भेद-विज्ञान ही है । वही श्री आत्म-तत्त्व-रसास्वादी अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

"भेदविज्ञानत सिद्धा सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥

अर्थ—जो कोई भी सिद्ध हुए है वे भेद-विज्ञानसे ही सिद्ध हुए हैं और जो कोई बँधे है वे भेद-विज्ञानके न होनेसे ही बन्धको प्राप्त हुये है ।

अत अब इन परनिमित्तक श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके प्रयत्नमे समय-का उपयोग न करके स्वावलम्बनकी ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्था-मे महती उपयोगिनी रामबाणतुल्य अचूक औषधि है । तदुक्तम्—

इतो न किंचित परतो न किंचित्, यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिक न किंचित् ॥

अर्थ—इस तरफ कुछ नही है और दूसरी तरफ भी कुछ नही है तथा जहाँ-जहाँ मै जाता हूँ वहाँ वहाँ भी कुछ नही है । विचार करके देखता हूँ तो यह ससार भी कुछ नही है । स्वकीय आत्मज्ञानसे बढ कर कोई नही है ।

इसका भाव विचार-स्वावलम्बनका शरण ही ससारबधनके मोचनका मुख्य उपाय है । मेरी तो यह श्रद्धा है जो सवर ही सम्य-ग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका मूल है ।

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है । और अज्ञानकी अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिककी अनुत्पत्ति यथाख्यातचारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यातचारित्र है । अत सवर ही दर्शनज्ञानचारित्राराधनाके व्यपदेशको प्राप्त करता है

तथा इसीका नाम तप है। क्योंकि इच्छानिरोधका नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ विश्वास है कि जो इच्छाका न होना ही तप है। अत तप-आराधना भी यही है। इस प्रकार सवर ही चार आराधना है अत जहाँ परसे श्रेयोमार्गकी आकाक्षाका त्याग है वहाँ श्रेयोमार्ग है।

●

श्रीयुत महानुभाव प० दीपचन्दजी वर्णी

इच्छाकार !

अनुकूल कारणकूटके असद्भावमे पत्र नही दे सका। क्षमा करना। आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है। अब हमे आवश्यकता इस बातकी है कि प्रभुके उपदेशके अनुकूल प्रभुके पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु इव प्रभुताके पात्र हो जावे। यद्यपि अध्यवसानभाव परनिमित्तक है। यथा—

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्माात्मनो याति यथार्ककान्त ।
तस्मिन् निमित्त परसग एव वस्तु स्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

अर्थ—आत्मा, आत्मा सम्बन्धी रागादिककी उत्पत्तिमे स्वय कदाचित् निमित्तताको प्राप्त नही होता है अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिकके उत्पन्न होनेमे अपने आप निमित्त कारण नही है किन्तु उनके होनेमे परवस्तु ही निमित्त हैं। जैसे अर्ककान्त मणि स्वय अग्निरूप नही परणमता है किन्तु सूर्यकिरण उस परिणमनमे कारण है। तथापि परमार्थ तत्त्वकी गवेपणामे वे निमित्त क्या बलात्कार अध्यवसान भावके उत्पादक हो जाते है ? नही, किन्तु हम स्वय अध्यवसान द्वारा उन्हे विषय करते है। जब ऐसी वस्तुमर्यादा है तब पुरुषार्थ कर उस ससारजनक भावोके नाशका उद्यम करना ही हम लोगोको इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोगकी पद्धतिमे निमित्तकी मुख्यतासे व्याख्यान होता है। और अध्यात्मशास्त्रमे पुरुषार्थकी

मुख्यता और उपादानकी मुख्यतासे व्याख्यानपद्धति है। और प्राय· हमे इसी परिपाटीका अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा। शरीरकी क्षीणता यद्यपि तत्त्वज्ञानमे बाह्य दृष्टिसे कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियोको प्रवृत्तिमे उतना बाधक नही हो सकतो। यदि वेदना-की अनुभूतिमे विपरोतताको कणिका न हो तब मेरी समझमे हमारी ज्ञानचेतनाकी कोई क्षति नही है।

विशेष नही लिख सका। आजकल यहाँ मलेरियाका प्रकोप है। प्राय बहुतसे इसके लक्ष्य हो चुके है। आप लोगोकी अनुकपासे मै अभीतक तो कोई आपत्तिका पात्र नही हुआ। कलकी दिव्य ज्ञानी जाने। अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखनेकी चेष्टा करूँगा।

●

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी,

योग्य इच्छाकार।

आपका पत्र आया। आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है। यह केवल मोहज परिणामकी वासना है। आपके साहसने आपमे अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको ससार-यातनाओसे मुक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक्चातुर्य्यमे मोक्षमार्ग नही। मोक्षमार्गका अकुर तो अन्त करण-से निज पदार्थमे ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन, काय क्या जाने। यह तो पुद्गल द्रव्यके विलास हैं। जहाँ पर उन पुद्गलकी पर्यायोने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टाको इस ससारचक्रका पात्र बना रक्खा है। अत अब दीपसे तमोराशिको भेदकर और चन्द्रसे परपदार्थ जन्य आतापको शमन कर सुधा समुद्रमे अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यता-के पात्र बनिये। वह पात्रता आपमे है। केवल साहस करनेका विलम्ब है। अब इस अनादि ससार-जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही

कार्य-सिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? लाभ तो आभ्यान्तर विशुद्धिसे है। विशुद्धिका प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्म ग्रन्थोकी चिन्तना है। अत इस दशामे परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीतिसे इस ग्रन्थमे सलग्न हो जाता है। उपक्षीण कायमे विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्यका बाधक होता है, अत आप सानन्द निराकुलतापूर्वक धर्मध्यानमे अपना समय यापन कीजिये। शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्राय सबकी है। परन्तु कोई भीतरसे दु खी है तो कोई बाह्यसे दु खी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमे अघाति कर्म असाताजन्य है। वह आत्मगुण घातक नही। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है, जो कि आत्मगुण घातक है। अत आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दु खके पात्र नही—अत आपको अब बडी प्रसन्नता इस तत्त्वकी होनी चाहिये, जो मै आभ्यतर रोगसे मुक्त हूँ।

प० छोटेलालसे दर्शन विशुद्धि। भाई सा० एक धर्मात्मा और साहसी वीर है। उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है। जो निर्जराका हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नही जो इतने धीर, वीर, वरवीर, दु खसीर बन्धुकी सेवा कर सके।

●

श्रीयुत वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार।

पत्र मिला। मै बराबर आपकी स्मृति रखता हूँ, किन्तु ठीक पता न होनेसे पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा आप धर्मात्माओके प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभुके चरणप्रसादसे बहुत ही उत्तम भावोसे हुई। मार्गमे अपूर्व शाति रही। कटक भी नही लगा। तथा आभ्यन्तरकी भी अशान्ति नही हुई। किसी दिन तो १९ मील तक

चला। खेद इस बातका रहा कि आप और बाबाजी साथने न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहाँ—बन्धु-वर! आप श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, समाधिशतक और समयसार-का ही स्वाध्याय करिये। और विशेष त्यागके विकल्पमे न पडिये। केवल क्षमादिक परिणामोके द्वारा ही वास्तविक आत्माका हित होता है। काय कोई वस्तु नही तथा आपही स्वय कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प। भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक है आप बुद्धिपूर्वक स्वय त्याग रहे है। मेरी तो यही भावना है—"प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्माको इस बधनके तोडनेमे अपूर्व सामर्थ्य दे।" आपके पत्रसे आपके भावोकी निर्मलताका अनुमान होता है। स्वतन्त्र भाव ही आत्मकल्याणका मूल मन्त्र है। क्योकि आत्मा वास्तविक दृष्टिसे तो सदा शुद्ध ज्ञानानद स्वभाववाला है। कर्म कलकसे ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करनेकी जो विधि है उस पर आप आरूढ है। बाह्य क्रियाकी त्रुटि आत्मपरिणामका बाधक नही और न मानना ही चाहिये। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता है, वह अशुद्धोपपोगकी है न कि मन, वचन, कायके व्यापारकी। इस पर्यायमे हमारा आपका सम्बन्ध न भी हो। परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तरमे अवश्य मिलेगे। अपने स्वास्थ्य सन्बन्धी समाचार अवश्य एक मासमे एक बार दिया करे। मेरी आपके भाईसे दर्शन विशुद्धि।

•

श्रीयुत प० दीपचन्दजी धर्मरत्न,

इच्छामि।

पत्र पढकर सन्तोष हुआ। तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रवण प्रत्यक्ष करा दिया। सर्व लोग आपके आशिक रत्नत्रयकी भूरिश प्रशसा करते हैं।

आपने जो प० भूधरदासजीकी कविता लिखी सो ठीक है। परन्तु यह कविता आपके ऊपर नही घटती। आप शूर हैं। देहकी दशा जैसी कवितामे कविने प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमे हमारा क्या घात हुआ ? यह हमारी बुद्धिगोचर नही हुआ। घटके घातसे दीपकका घात नही होता। पदार्थका परिचायक ज्ञान है। अत ज्ञानमे ऐसी अवस्था शरीरकी प्रतिभासित होती है एतावत् क्या ज्ञान तद्रूप हो गया ?

श्लोक

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमाबोद्धा न बोध्यादयम् ।
यायात्कामपि विक्रिया तत इतो दीप प्रकाश्या-पि ॥
तद्वस्तुस्थितिबोधबन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो ।
रागद्वेषमया भवन्ति महजा मुञ्चत्युदासीनताम् ॥

अर्थ—पूर्ण, अद्वितीय, नही च्युत है शुद्ध बोधकी महिमा जाकी, ऐसा जो बोद्धा है वह कभी भी बोध्य पदार्थके निमित्तसे प्रकाश्य (घटादि) पदार्थसे प्रदीपकी तरह कोई भी विक्रियाको प्राप्त नही होता है। इस मर्यादा विषयक बोधसे जिसकी बुद्धि वन्ध्या है वे अज्ञानी है। वे ही रागद्वेषादिकके पात्र होते है और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते है। आप विज्ञ है, कभी भी इस असत्य भावको आलम्बन न देवेगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते है और मरेगे। इससे क्या आया। एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमे कौनसी आश्चर्यकी घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषोको विचार कोटिसे पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाताके उदय आदि कारणकूट होनेपर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञानमे आयी। वेदना क्या वस्तु है ? परमार्थसे विचारा जाय तो यह एक तरहसे सुख गुणमे विकृति हुई वह हमारे ध्यानमे आयी। उसे हम नही चाहते। इसमे कौनसी विपरीतता हुई ? विपरीतता तो तब

होती है जब हम उसे निज मान लेते। विकारज परिणतिको पृथक् करना अप्रशस्त नहीं, अप्रशस्तता तो यदि हम उसीका निरतर चिंतवन करते रहे और निजत्वको विस्मरण हो जावें तब है।

अत जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदर भावसे व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुषकी तरह आनन्दसे साधुकी तरह प्रवृत्ति करना चाहिये। निदानको छोडकर आतत्रय षष्ठ गुणस्थान तक होते है। थोडे समय तक अर्जित कर्म आया, फल देकर चला गया। अच्छा हुआ, आकर हलकापन कर गया। रोगका निकलना ही अच्छा है। मेरी मम्मतिमे निकलना, रहनेकी अपेक्षा, प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीरकी जीर्ण शीर्ण अवस्था द्वारा निकल रही है तब आपको बहुत ही आनन्द मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी न निकलती तब क्या स्वर्गमे निकलती? मेरी दृष्टिमे केवल असाता ही नही निकल रही, साथ ही मोहकी अरति आदि प्रकृतियाँ भी निकल रही है। क्योकि आप इस असाताको सुखपूर्वक भोग रहे है। शाति पूर्वक कर्मोंके रसको भोगना आगामी दु खकर नही।

बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ परन्तु ज्ञानकी न्यूनतासे लेखनी रुक जाती है। बन्धुवर! मै एक बातकी आपसे जिज्ञासा करता हूँ, जितने लिखनेवाले और कथन करनेवाले तथा कथन कर बाह्य चरणानुयोगके अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्ष वाक्योपर श्रद्धालु यावत् व्यक्ति हुये है, अथवा है तथा होगे, क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं? मेरी तो श्रद्धा नही। अन्यथा श्री कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है। हे प्रभो! "हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिग न हो" इस वाक्यकी चरितार्थता न होती तो काहेको लिखते। अत परकी प्रवृति देख रचमात्र भी विकल्पको आश्रय न देना ही हमारे लिये हितकर है। आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नही, जो आत्महित करनेवाले हैं वह शिर पर आग लगाने पर तथा

सर्वांग अग्निमय आभूषण धारण करानेपर तथा यन्त्रादि[1] द्वारा उपद्रित होनेपर मोक्षलक्ष्मीके पात्र होते है। मुझे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देख कर इतनी प्रसन्नता होती है। प्रभो ? यह अवसर सर्वको दे। आपकी केवल श्रद्धा ही नही। किन्तु आचरण भी अन्यथा नही। क्या मुनिको जब तीव्र व्याधिका उदय होता है, तब बाह्य चरणानुयोग आचरणके असद्भावमे क्या उनके छठवा गुणस्थान चला जाता है ? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरणके समय हे मुने। इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार सगत होगा। पीडा आदिमे चित्त चचल रहता है इसका क्या यह आशय है पीडाका बारम्बार स्मरण हो जाता है। हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथमे यह भाव तो रहता है। यह चचलता सम्यक् नही परन्तु मेरी समझमे इस पर भी गभीर दृष्टि दीजिये। चचलता तो कुछ बाधक नही। साथमे उसके अरतिका उदय और असाताकी उदीरणासे दु खानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करनेकी भावना रहती है। इसीसे इसे महर्षिओने आर्त्तध्यान की कोटिमे गणना की है। क्या इस भावके होनेसे पंचम गुणस्थान मिट जाता है ? यदि इस ध्यानके होने पर देशव्रतके विरुद्ध भावका उदय श्रद्धामे न हो तब मुझे तो दृढतम विश्वास है, गुणस्थानको कोई भी क्षति नही। तरतमता ही होती है वह भी उसी गुणस्थानमे। ये विचारे जिन्होने कुछ नही जाना कहाँ जावेगे, क्या करे इत्यादि विकल्पोके पात्र होते है—कही जाओ, हमे उसकी मीमासासे क्या लाभ ? हम विचारे इस भावसे कहा जावेगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानन्द जैसा आपकी निर्मल दृष्टिने निर्णीत किया

---

१ घानी, कोल्हू

है द्रव्यदृष्टिसे वैसा ही है। परन्तु द्रव्य तो भोग्य नही, भोग्य तो पर्याय है, अत उसके तात्त्विक स्वरूपके जो बाधक हैं उन्हे पृथक् करनेकी चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोरकी सजा देखकर साधुको भय होना मेरे ज्ञानमे नही आता। अत मिथ्यात्वादि क्रिया सयुक्त प्राणियोका पतन देख हमे भय होनेकी कोई भी बात नही। हमको तो जब सम्यक्‌रत्नत्रयकी तलवार हाथमे आगई है और वह यद्यपि वर्तमानमे मौथरी धारवाली हैं, परन्तु है तो असि। कर्मेधनको धीरे धीरे छेदेगी। परन्तु छेदेगी ही। बडे आनन्दसे जीवनोत्सर्ग करना। अशमात्र भी आकुलता श्रद्धामे न लाना। प्रभुने अच्छा ही देखा है। अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते। समाधिमरणके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या पर निमित्त ही है ? नही।

जहाँ अपने परिणामोमे शाति आई वही सर्व सामग्री है।

अत हे भाई। आप सर्व उपद्रवोके हरणमे समर्थ और कल्याण पथके कारणोमे प्रमुख जो आपकी दृढतम श्रद्धा है वह उपयोगिनी कर्मशत्रुवाहिनीको जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है। मै तो आपके पत्र पढकर समाधिमरणकी महिमा अपने ही द्वारा होती है, निश्चय कर चुका हूँ। क्या आप इससे लाभ न उठावेगे ? अवश्य ही उठावेगे।

नोट—मै विवश हो गया। अन्यथा अवश्य आपके समाधिमरणमे सहकारी हो पुण्यलाभ करता। आप अच्छे स्थान पर ही जावेगे। परन्तु पचम काल है। अत हमारे सम्बोधनके लिये आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा। अथवा जावेगा ही तब कालकृत असमर्थता बाधक होकर आपको शाति देगी। इससे कुछ उत्तरकालकी याचना नही करता।

●

श्रीयुत महाशय पं० दीपचन्दजी वर्णी

योग्य इच्छाकार

बन्धुवर ! आपका पत्र पढकर मेरी आत्मामे अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्थामे दृढश्रद्धालु हो गये हैं। यही ससारसे उद्धारका प्रथम प्रयत्न है। कायकी क्षीणता कुछ आत्मतत्त्वकी क्षीणतामे निमित्त नही, इसको आप समीचीनतया जानते हैं। वास्तवमे आत्माके शत्रु तो राग, द्वेष और मोह हैं। जो इसे निरन्तर इस दु खमय ससारमे भ्रमण करा रहे है। अत आवश्यकता इसकी है कि जो राग-द्वेषके आधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्दकी ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि होवे, इसका कुछ भी रज नही करना चाहिये। रागादिकोका होना रुचिकर नही होना चाहिये। बडे बडे ज्ञानी जनोके राग होता है। परन्तु उस रागमे रजकताके अभावसे अग्रे उसको परिपाटी-रोधका आत्माको अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकोकी सन्तानका अपचय होते होते एक दिन समूलतलसे उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इस ससारको वासनाओका पात्र नही होता। मै आपको क्या लिखूँ ? यही मेरी सम्मति है—जो अब विशेष विकल्पोको त्यागकर जिस उपायसे राग द्वेषका आशयमे अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है। क्योकि पर्यायका अवसान है। यद्यपि पर्यायका अवसान तो होगा ही किन्तु फिर भी सम्बोधनके लिये कहा जाता है तथा मूढोको वास्तविक पदार्थका परिचय न होनेसे बडा आश्चर्य मालूम पडता है।

विचारसे देखिये—तब आश्चर्यको स्थान नही। भौतिक पदार्थोंकी परिणति देखकर बहुतसे जन क्षुब्ध हो जाते है। भला जब पदार्थ मात्र अनन्त शक्तियोके पु ज है, तब क्या पुद्गलमे वह बात न हो,

यह कहाँका न्याय है। आजकल विज्ञानके प्रभावको देख लोगोकी श्रद्धा पुद्गल द्रव्यमे ही जाग्रत हो गई है। भला यह तो विचारिये, उसका उपयोग किसने किया? जिसने किया उसको न मानना यही तो जडभाव है।

बिना रागादिकके कार्माण वर्गणा क्या कर्मादिरूप परिणमनको समर्थ हो सकती है? तब यो कहिये। अपनी अनन्तशक्ति के विकासका बाधक आपही मोहकर्म द्वारा हो रहा है। फिर भी हम ऐसे अन्धे है जो मोहकी ही महिमा आलाप रहे है। मोहमे बलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तुकी ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाववाले पदार्थको कि जिसकी वक्र दृष्टिसे यह जगत् अनादिसे बन रहा है। और जहाँ उसने वक्र दृष्टिको सकोचकर एक समय मात्र सुदृष्टिका अवलम्बन किया कि इस ससारका अस्तित्व ही नही रहता। सो ही समयसारमे कहा है—

कलश

कषायकलिरेकत शान्तिरस्त्येकतो।
भवोपहतिरेकत स्पृशति मुक्तिरप्येकत ॥
जगत्त्रितयमेकत स्फुरति चिच्चकास्त्येकत।
स्वभावमहिमाऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत ॥

अर्थ—एक तरफसे कषाय कालिमा स्पर्श करती है और एक तरफसे शान्ति स्पर्श करती है। एक तरफ ससारका आघात है और एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनो लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतन आत्मा प्रकाश कर रहा है। यह बडे आश्चर्यकी बात है कि आत्माकी स्वभाव महिमा अद्भुतसे अद्भुत विजयको प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावोसे यही अन्तिम कर्ण-प्रतिभाका विषय होता है जो आत्म द्रव्य ही की विचित्र महिमा है। चाहे नाना दु खाकीर्ण जगतमे नाना वेष धारणकर नटरूप बहुरूपिया बने।

चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीलाको सम्वरण करके गगनवत् पारमार्थिक निर्मल स्वभावको धारणकर निश्चल तिष्ठे। यही कारण है। "सर्व वै खल्विद ब्रह्म" अर्थ—यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है। इसमे कोई सन्देह नही, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रहको छोड देवे। तब जो कुछ कथन है अक्षरश सत्य भासमान होने लगे। एकान्तदृष्टि ही अन्धदृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रमसे कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पच स्थावर और त्रसका समुदाय जगत् दृश्य हो रहा है, क्या है ? क्या ब्रह्मका विकार नही ? अथवा स्वमतकी ओर कुछ दृष्टिका प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारणकी मुख्यतासे ये जो रागादिक परिणाम हो रहे है, क्या उन्हे पौद्गलिक नही कहा है ? अथवा इन्हे छोडिये। जहाँ अवधिज्ञानका विषय निरूपण किया है, वहाँ क्षयोपशम भावको भी अवधिज्ञानका विषय कहा है। अर्थात्-पुद्गलद्रव्यसम्बन्धेन जायमानत्वात् क्षायोपशमिक भाव भी कथचित रूपी है। केवलज्ञान भाव अवधिज्ञानका विषय नही, क्योकि उसमे रूपी द्रव्यका सम्बन्ध नही। अतएव यह सिद्ध हुआ कि औदयिक भाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथचित् पुद्गलसम्बन्धेन जायमान होनेसे मूर्तिमान है न कि रूपरसादिमत्ता इनमे है। तद्वत् अशुद्धताके सम्बन्धसे जायमान होनेसे यह भौतिक जगत भी कथचित् ब्रह्मका विकार है। कथचित् का यह अर्थ है—

जीवके रागादिक भावोके ही निमित्तको पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादि रूप परिणमनको प्राप्त है। अत यह जा मनुष्यादि पर्याय है, दो असमान जातीय द्रव्यके सम्बन्धसे निष्पन्न है। न केवल जीवकी है ओर न केवल पुद्गलकी है। किन्तु जीव और पुद्गलके सम्बन्धसे जायमान हैं। तथा यह जो रागादि परिणाम है जो न तो केवल जीवके ही है और न केवल पुद्गलके है किन्तु उपादानकी अपेक्षा तो जोवके हैं और निमित्त कारणकी अपेक्षा पुद्गलके है। और द्रव्यदृष्टि कर देखे तो न पुद्गलके है और न जीवके है। शुद्ध

द्रव्यके कथनमे पर्यायकी मुख्यता नही रहती। अत यह गौण हो जाते है। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनोके द्वारा सम्पन्न होती है। अस्तु, इससे यह निष्कर्ष निकला, यह जो पर्याय है, वह केवल जीवकी नही किन्तु पौद्गलिक मोहके उदयसे आत्माके चारित्र गुणमे विकार होता है। अत हमे यह न समझमा चाहिये कि हमारी इसमे क्या क्षति है। क्षति तो यह हुई जो आत्माकी वास्तविक परिणति थी वह विकृत भावको प्राप्त हो गई। यही तो क्षति है। परमार्थसे क्षतिका यह आशय है कि आत्मामे रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवे। तब जो उन दोषोके निमित्तसे यह जीव किसी पदार्थमे अनुकूलता और किसीमे प्रतिकूलताकी कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभावमे आकुलित रहता था, शान्तिके आस्वादकी कणिकाको भी नही पाता था। अब उन रागादिक दोषोके असद्भावमे आत्मगुण चारित्रकी स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्तको अवलम्बन कर आत्माका चेतना नामक गुण है वह स्वयमेय दृश्य और ज्ञेय पदार्थोका तद्रूप हो दृष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिबत् अकम्प रहता है। इसीका नाम भावमुक्ति है। अब आत्मामे मोहनिमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई, किन्तु अभी जो योगनिमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेशप्रकम्पनको करता ही रहता है। तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी साता वेदनीयका हुआ करता है। यद्यपि इसमे आत्माके स्वाभाविक भावकी क्षति नही। फिर भी निरपवर्त्यं आयुके सद्भावमे यावत् आयुके निषेक है तावत् भवस्थितिको मेटनेको कोई भी क्षम नही। तब अन्तर्मुहूर्त आयुका अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्मकी स्थिति अधिक रहती है, उस कालमे तृतीय शुक्लध्यानके प्रसादसे दडकपाटादि द्वारा शेष कर्मोकी स्थितिको आयु सम कर चतुर्दश गुणस्थानका आरोहण कर अयोग

नामको प्राप्त करता हुता लघु पचाक्षरके उच्चारणके काल सम गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्थ ध्यानके प्रसादसे शेष प्रकृतियोको नाश कर परम यथाख्यात चारित्रका लाभ करता हुआ १ समयमे द्रव्यमुक्ति व्यपदेशताको लाभकर मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मीका भोक्ता होता हुआ लोकशिखरमे विराजमान होकर तीर्थंकर प्रभुके ज्ञानका विषय होकर हमारे कल्याणमे सहायक हो, यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज आगये, उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बातका विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। जो हमे भी आपकी वैयावृत्ति करनेका अवसर मिल जाता, परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ ? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पचम गुणस्थानवर्ती जीवकी प्राप्ति हो सके। आपके स्वास्थ्यमे आभ्यतर तो क्षति है नही, जो है सो बाह्य है। उसे आप प्राय वेदन नही करते यही सराहनीय है। धन्य है आपको—जो इस रुग्णावस्थामे भी सावधान है। होना ही श्रेयस्कर है। शरीरकी अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान हीयमान होनेमे अध्रुव और शीतदाह ज्वरावेश द्वारा अनित्य है, ज्ञानी जनको ऐसा जानना ही मोक्षमार्गका साधक है। कब ऐमा समय आवेगा जो इसमे वेदनाका अवसर ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा। जब आप निश्चल वृत्तिके पात्र होवेगे। अब अन्य कार्योंसे गौण भाव धारणकर सल्लेखनाके ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखनेकी चुलवुल उठे तब उसीपर लिखनेकी मनोवृत्तिकी चेष्टा कीजिये। मै आपकी प्रशसा नही करता, किन्तु इस समय ऐसा भाव जैसा कि आपका है, प्रशस्त है।

ज्येष्ठ वदी १ से फा० सु० ५ तक मौनका नियम कर लिया है। एक दिनमे एक घण्टा शास्त्रमे बोलूँगा।

पत्र मिल गया—पत्र न देनेका अपराध क्षमा करना।

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी साहब,

योग्य इच्छाकार।

पत्रसे आपके शारीरिक समाचार जाने—अब यह जो शरीर पर है शायद इससे अल्प ही कालमें आपकी पवित्र भावनापूर्ण आत्माका सम्बन्ध छूटकर वैक्रियक शरीरसे सम्बन्ध हो जावे। मुझे यह दृढ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीरमे होगी—न कि आत्म-चिंतवनमे। असातोदयमे यद्यपि मोहके सद्‌भावसे विकलताकी सम्भावना है। तथापि आशिक भी प्रबल मोहके अभावमे वह आत्म-चिंतनका बाधक नही हो सकती। मेरी तो दृढ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होगे। और अन्ततक दृढतम परिणामो द्वारा इन क्षुद्र बाधाओकी ओर ध्यान भी न देगें। यही अवसर ससार लतिकाके घातका है।

देखिये, जिस असातादि कर्मोकी उदीरणाके अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्रतप धारण करते-करते शरीरको इतना कृश बना देते है, जो पूर्व लावण्यका अनुमान भी नही होता। परन्तु आत्म-दिव्यशक्तिसे भूषित ही रहते है। आपका धन्यभाग्य है। जो बिना ही निर्ग्रंथपद धारणके कर्मोका ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदयमे आकर पृथक् हो रहे है। इसका जितना हर्ष मुझे है, नही कह सकता, वचनातीत है।

आपके ऊपरसे भार पृथक् हो रहा है फिर आपके सुखकी अनुभूति तो आपही जाने। शातिका मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है। जो कि इस समय आपके हो रहे। अब केवल स्वात्मानुभव ही रसायन परमौषधि है। कोई-कोई तो क्रम-क्रमसे अन्नादिका त्यागकर समाधिमरणका यत्न करते है। आपके पुण्योदय-से स्वयमेव वह छूट गया। वही न छूटा, साथ-साथ असातोदय द्वारा दु खजनक सामग्रीका भी अभाव हो रहा है।

अत हे भाई! आप रचमात्र क्लेश न करना, जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्माको लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्दका क्या अवसर होगा। मुझे अन्तरगसे इस बातका पश्चात्ताप हो जाता है, जो अपने अन्तरग बन्धुकी ऐसी अवस्थामे वैयावृत्त्य न कर सका।

आ० शु० चि०
माघ व० १४ स० १९९७, } **गणेशप्रसाद वर्णी**

•